श्री गोकुलेश युग

(वि. सं. १६४२–१६९७)

श्री विट्ठलेश्वर के बाद श्री गोकुलेश युग का प्रारम्भ होता है। श्री गोकुलनाथजी श्री गुसांईजी के चतुर्थ पुत्र थे। आपका जन्म वि.सं. १६०८ में हुआ था।

आपके पितृचरण के लीलास्थ समय आपकी वय ३४-३५ की थी। व्यवहारादि कार्य का भार आपने हस्तगत कर लिया था। आपके पितृचरण एवं बड़े भ्राता श्री गिरधरजी से सम्प्रदाय के सिद्धांत, सेवा रीति, भाव-भावना, प्रणाली एवं व्यवहार कुशलतादि प्राप्त कर चुके थे। उसी समय दरम्यान सम्प्रदाय के अष्टछापादि संगीताचार्यों के निकट संपर्क से काव्य और संगीत विद्या में उत्तम जानकारी प्राप्त कर ली थी। यही नहीं राजद्वारी गायक-वादकों से भी आपका संपर्क रहा करता था।

आपका दूसरा नाम 'वल्लभ' भी प्रचार में था। पितृचरण श्री विट्ठलेश्वर तो प्रिय नाम 'वल्लभ' से ही बुलाया करते थे। कहा जाता है कि 'वल्लभ' छाप की कीर्तन-पद रचना आप ही की है। किन्तु इस छाप के कीर्तन बहुत कम दिखाई देते हैं। आपका व्रजभाषा का गद्य साहित्य विपुल प्रमाण में प्रचलित है किन्तु जो कुछ पद प्राप्त होते हैं, उनमें से निम्न दो पद उदाहरणार्थ यहां दिये जा रहे हैं, जो कीर्तन प्रणाली में आज भी गाये जाते हैं।

निम्न पद में कुंज की भावना के उपरान्त श्रीजी का मुरली वादन तथा प्रियाजी का वीणा-वादन तथा 'सारंग' राग का सुन्दर संगीतात्मक भाव-वर्णन किया गया है:–

(१) राग–सारंग, ताल-चौताल:–

बैठे हरि राधे संग कुंज भवन अपने रंग कर मुरली अधर धरें सारंग मुख गाईरी ।। मोहन अति ही सुजान परम चतुर गुन निधान जानि बूझि एक तान चूक कें बजाईरी ।।१।। प्यारी जब गह्यो बीन सकल कला गुन प्रवीन अति नवीन रूप सहित वही तान सुनाई ।। "वल्लभ" गिरिधरनलाल रीझ दई अंकमाल कहत भलें-भलें लाल सुंदर सुखदाईरी ।।२।।

(२) आपके पितामह श्रीमद् वल्लभाचार्यजी की जन्म बधाई का पद, राग-देवगंधार–

प्रगटे कृष्णानन द्विज रूप ।। माधव मास कृष्ण एकादशी, आये अग्नि स्वरूप ।।१।। दैवीजीव उद्धारन कारन आनंदमय रसरूप ।। "वल्लभ" प्रभु श्री गिरिधर प्रभु दोऊ, तेइ एइ एक स्वरूप ।।२।।

आपके समय में श्रीमद् वल्लभाचार्यजी की ८४ और गुसांईजी की २८–[(१) गोकुल मंदिर में (२) बड़ी बैठक (३) वृंदावन (४) राधाकृष्ण कुंड (५) चंद्रसरोवर (६) चंद्रसरोवर (फूलघर) (७) गोपालपुर (८) कामवन (९) प्रेमसरोवर (१०) संकेतवन (११) रीठोरा (चंद्रावती कुंड) (१२) करहला (१३) कोटवन (१४) चीरघाट (१५) बच्छबन (१६) बेलवन (१७) चरणाट (१८) अडेल (१९) गौडदेश (बंगाल) (२०) सोरमजी (२१)) गोधरा (२२) अलीणा (२३) असारवा (२४) खंभात (२५) मवानगर (जामनगर) (२६) गुरुगढ़ (२७) द्वारका (दाऊजी मन्दिर के पास) (२८) द्वारका रामलक्ष्मण मंदिर] बैठकें स्थापित हो चुकी थी। उसी प्रकार श्री गोकुलनाथजी ने भी भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में अपने रसाला सहित पधार-कर श्रीमद् भागवत सप्ताह का आयोजन किया था, इन स्थलों को श्री गोकुलनाथजी की बैठकें कही जाती हैं । जो निम्न प्रकार हैं:–

(१) गोकुल (२) वृंदावन (३) राधाकृष्ण कुंड (४) चंद्रसरोवर (५) गोपालपुर (६) कामवन (७) करहला (८) रासोली (९) सोरमजी (१०) अडेल (११) काश्मीर (१२) गोधरा (१३) असारवा।

आपके पिताचरण श्री विट्ठलेश्वर अपने सातों पुत्रों को भगवद् स्वरूप इत्यादि का बँटवारा कर चुके थे। बाद में इन सातों बालकों ने अलग-अलग मन्दिर बनाकर सेवा का प्रकार और प्रचार बढ़ाते रहे । अपने-अपने भावानुसार उत्सव, त्यौहारों में सेवा का प्रकार नियत होता रहा तदनुसार कीर्तन गान की सेवा में भी पदों की संख्या बढ़ती रही । अष्टछाप के सैकड़ों पदों की मूल गान परम्परा इसी समय तक ठीक-ठीक प्रवाहित होती रही किन्तु अधिकतर मन्दिरों तक ही सीमित रही ।

सम्प्रदाय की सुरक्षा करने मे आपका महत्वपूर्ण स्थान है । आपने विधर्मियों से जबरदस्त सामना करके सम्प्रदायकी दीक्षाके अंगभूत तुलसीमाला एवं तिलक की रक्षा की। सम्प्रदाय का ब्रजभाषा साहित्य के ऐतिहासिक साहित्य में ८४ वैष्णव की वार्ता तथा २५२ वैष्णव की वार्ता एवं आपके हास्य प्रसंग इत्यादि सुप्रसिद्ध साहित्य आपकी ही देन है।

आपकी कार्यसिद्धि का युग अधिकतर शहनशाह जहाँगीर के समय से यानी १६४२ से माना जाता है। आपके पितृचरण श्री विट्ठलेश के समय से जो राग, भोग, शृंगारादि का सेवाक्रम था जो आपके समय में अधिक बढ़ता रहा। विविध प्रकार की सामग्री तथा शृंगारादि के वैभव के साथ संगीत कला को भी आपने अधिक उत्तेजन दिया। उस समय के प्रसिद्ध गायक-वादक-नृत्यकार भी आपको संगीत सुनाने के लिये आया करते थे। आपकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व, व्यवहारता एवं सम्प्रदाय, प्रचार की तमन्ना से कुछ सेवकों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे आपको ही सर्वस्व मानने लगे। ऐसे अनन्य वैष्णवगण श्री गोकुलनाथजी के सेवक कहलाने लगे। आज भी वे श्री गोकुलनाथ के सिवाय अन्य किसी में श्रद्धा नहीं रखते।

आपके ऐसे अनन्य सेवकों में श्री मोहनभाईजी और श्री गोकुलभाईजी ये दोनों गुजराती वैष्णव अधिकाधिक कृपापात्र थे, जो श्री गोकुलेश को ही अपना सर्वस्व धन समझते थे। उन्होंने श्री गोकुलेश प्रभु के जन्म (शताब्दि) महोत्सव का बड़ी धामधूम से बादशाही ठाठ से एक मास तक आयोजन किया था। उसी का वर्णन सद्भाग्य से मौजूद है। उस में ११३ मांगल्य (कडवाँ) और १५०० तुलबंदी (कडीयाँ) है। जिनमें वस्त्राभूषण वर्णन, पात्र वर्णन सुगंधी द्रव्य वर्णन के साथ शीवण कला, सामग्री कला, चित्रकला, शोभन कला, वेश-भूषादि और संगीत कला का उस समय का चित्र दृष्टिगोचर होता है। अतः यहाँ संगीत संबंधी ही चर्चा उचित होने से मांगल्य ५३ और ५५ प्रसिद्ध है। इस काव्य ग्रंथ की रचना स्वयं श्री गोकुल भाईजी ने सं १७०८ में की और ग्रंथ का नाम "स्वरूपानुभवोच्छव रसलीला" है।

"स्वरूपानुभवोत्सव रसलीला" ग्रंथ के मांगल्य ५३ तथा ५५ में निम्न प्रकार के नगारची के नाम पाये जाते हैं। साथ में शहनाई का भी उल्लेख प्राप्त होता है। शहनाई वादको में श्रेष्ठ असे आग्रा घराना के औ गाँव के निवासी (१) वाजीदअली (२) आलमखाँ और (३) कालु। नगारची में (१) हसनअली (२) जमालखाँ।

गायक-नायक गुण जनों के नाम—

(१) गोपाल नायक—जिन्होंने अपने संगीत द्वारा हिरणों को मोहित कर दिये थे।

(२) नायक बैजू—जिन्होंने अपने संगीत द्वारा पत्थरों को पिघलाया था।

(३) गायक—गोविंददास, (४) नायक बक्सू, (५) चिरजू, (६) मछू एवंम कलावन्तों में शिरताज (७) तानसेन, (८) चंचल (९) ससि और महागुणी (१०) नायक धोंधी।

मुरलीवादक कमालखान

वैष्णव गायक:—जिन्होंकी पदरचना आज भी संप्रदाय में गायी जाती है। (१) चतुर बिहारी, (२) दास वृन्दावन तथा (३) श्यामदास, (४) रामदास (पूरविया कत्थक)।

नट गायक (नाट्यकार):—दक्षिण के (१) त्रिमल, (२) नित्यानंद, (३) कहानदास और नंदगाँव के कृष्णदास नटुओ।

गागर वादक:—(१) हरिचंद, (२) हीरामणि।

नृत्यकार: मथुरा का कृष्णदास सोनी, गोकुल के गोकुलभाइ लुहार तथा मुरली और बलराम एवं गुजरात के द्वारकादास और मोहनदास तथा नृत्यकार नारणदास।

पखावजी-मृदंग वादक:—वृन्दावन के पखावजी, (२) कीर्तनदास, ग्वालियर के पखावजी, (२) दमजी-दामजी तथा गुजरात के (३) धूलो मृदंगी।

ताल-वादक:–मथुरा के (१) दमलो-दामोदर और (२) महावनीओ चीन्नु।

कठताल-वादक:–मथुरा के हरजीवन।

जलतरंग-वादक:–द्वारकादास।

सारंगी-वादक:–गुणीराज शिरोमणि (१) ध्यानदास और अजोड सारंगी-वादक (२) चतुरदास।

वीणा-वादक:–(१) गोपालदास और (२) दामोदर ठाकुर और श्रीगोकुलेश प्रभु के सिखाये हुअे रागों के वादक (३) द्वारकादास।

रबाब-वादक:–गोवर्धन के (१) खनुओ और (२) मखुओ खाबी तथा महागुणी (३) रायचंद गुजराती।

पिनाकी-वादक:–हेरुक गामके (१) मयाचंद और (२) भावचंद।

अमृतकुंडली-वादक:–करेटीके (१) भगवानदास।

ढोलकी-वादक:–(१)लीलो सोनार (सोनी) और सेहरा के हरियो

स्त्री गायिका (१) राणी पद्मावती और (२) रूपमती हुडकवादकिनी स्त्रियाँ (१) रामकली, (२) अनारकली, (३) देव्या, (४) नांती, (५) करुणा (६) गंभीरा।

ढोलक वादकी:–(१) रुक्का भाटकी रूपवंती, (२) रुक्का भाट।

वाद्यों की नामावली

(१) वीणा (२) स्वर वीणा (३) किन्नरी (४) अघोटी (५) पिनाक (६) तंबूर (७) रबाब (८) सारंगी (९) सूर मंडल (१०) चीनी न टुक (११) कठताल (१२) झांझ (१३) मृदंग (१४) मुरज (१५) पखावज (१६) ढोलक (१७) आवज (१८) अमृत कुंडली (१९) डफ (२०) चंग (२१) जलतरंग (२२) गागर (२३) महुवर (२४) वांसली (२५) उपंग (२६) मुखचंग (२७) ढोलकी (२८) खंजरी (२९) हुड (३०) हुडकिनी (३१) ढोल (३२) दमामा (३३) शहनाइ (३४) नगारे (३५) ताल (३६) मुरली।

आपके समयके गायक-वादक गण तथा वाद्यों की जो गुर्जर काव्य रचना, जो उपर्युक्त दे चुके हैं, वह संगीतके इतिहास में अति उपयोगी है। जो की उनमें बदनु, बैजु, गोपाल नायक, तानसेन, रानी पद्मावती जैसे महान संगीतज्ञों की उपस्थिति वि. सं. १६९२-९६ में होना संभावित नहीं है। फिर भी उन नामोंका इस काव्य में उल्लेख होनेका संभव यही हो सकता है कि आपके प्रारंभिक जीवन कालके प्रसंगों में वे उपस्थित हुअे हों।

मांगल्य-मूल निम्न प्रकार है

१. अने अहीं नाथजी आगल्य, कीर्तन थाय छे बहुवारजी। ताल झांझने पखाजशु
दिवसे केटलाअेक आगम सारगी। गाअे ते जनमलीला अने बाललीला अतिअे

जार स्नेह शुंजी ते सुणी सुणी प्रभुजी प्रसन्न थाय छे गाये छे तेह शुंजी अने वली भगवदी सहुमली वेठकमां हां गाय धोलजी स्त्रीय पुरुष भिन्न भिन्न थकां आपायणे रोलजी

२. दमामा अरु बाजे सबे शहनाई मंगावो
ब्रजपतिजीने पठवीया, प्रभुअे पछी व्यांह
ने वाजीगनी आज्ञा थई, वाग्या मंदिरमांह (मांगल्य–५३)

मांगल्य–५५
यद्यपि मांहे कोई असुर नाम छे पण ते प्रभु प्रमाण्याजी,
गुणीजन गायक ने वाजंत्रीया श्री मुखे जे वखाण्याजी,
प्रथम नगारची ने शेहेनाईया, नोषत्यना वाजदारजी,
औ गामना माहा सुघड़गुणी, आगराई वलासारजी,
वजीद आलम अे औना, शहेनाइया सिरताजजी,
श्री महाप्रभुजी अे स्वतह शरणे, राच्या सहित समाजजी,
हसन जमाल नगारची अे आदि, देइ सहु साजंदाजी,
वली आगराई शहेमाइओ, कालु नाम छे जे तेइनुंजी,
गोपाल नायक अे बेहेजू सहित, अे बेहू अतिशे वखाण्याजी,
रात्रे मृग मोहित करी सोतीनी, माला पहेरावे तेह ने जी,
बेहेजू राग आलापी द्रवित करे, पाथर छे जेहने जी,
वली गायक गोविंददासने बासू नायक जेहजी,
चिरजू नायक ने मछू नायक, घणु सहराया छे तेहजी,
कलावंत शिरताज तानसेन, राजा तणा निवाज्याजी,
सात दिप नवखंड मांहे जश रमी रत्यो नामे गाज्याजी,
वली चंचल ससि अे बेहू भाईने धोंधी महागुणी रायजी,
अति मधुरे सुर गाईने कमालखान मुरली पायजी,
अे सहु शिरमोर चतुरबिहारी, परम चतुर गुण रूपजी,
दास वृंदावन कृपापात्र प्रभुना पद करे अनुपजी,
श्याम राम पूरवीया कथक सेवक थया प्रभुसानिध्यजी,
द्रुपद नौतन करी गायां प्रभुना गुण परमाविधजी,
नटुआ त्रिमला ने नित्यानंद कहानदास दक्षिणातजी,
नंदग्रामी कृष्णदास अे नटुओ, तेहनी पण विस्यातजी,
हरिचंद ने हीरामणि गागरी, तेह वगाडे अनुपजी,
मथुरा नो कृष्णदास सोमार ते निर्तनकारी मांह भूपजी,
निर्तकारी गोकुल लुहार अे श्री गोकुलवासी घरनाजी,
अने मुरली बलराम अेह बडा निर्तकारी थया घरनाजी,

गंधर्व द्वारकादास ने मोहनदास जेहु गुजरातीजी,
ने नारणदास निर्तकारीअे त्रणे गुणी संधातीजी,
कीर्तनदास पखावजी वृंदावनी, दमजा जे ग्वालेरीजी,
धूली मृदंगी ते गुजरातनो विद्यागुणे रहे घेरीजी,
ताल धारी मथुरानो दमलोने हरजी कठताली जी,
कलावंत महावनीयो चीन्नु, ताल वगाडे रसालीजी,
द्वारकादास खासजी आया श्री प्रभुने सानिध्यजी,
महद अनुग्रह दादाजीने अे पाम्यो परमाविधजी;
जलतरंग चीनी प्यालानां, प्रभु आगलयने वजाड्याजी,
चढता उतरता स्वर साधी सुर बहु राग देखाड्याजी,
भाग्यराशि गुणीराज शिरोमणि ध्यानदास निज भक्तजी,
परमविध सारंगी वगाडे ते गुणे प्रभु अनुरक्तजी;
अेहने परोक्ष ते चतुरदास, सारंगी वगाडे रुडोजी,
संपूर्ण भूमंडल मांहा, अेह नी सम नहीं कोईजी,
गोपालदास ने दामोदर ठाकुर, द्वार रहे विणुकारजी,
धारका ते महाप्रभुनो शिखव्यो, जंत्र वगाडे अपारजी,
खनुओ मखुओ रबाबी रबाब ते गोधन थी लइ आवेजी;
रायचंद ते गुजराती ते पण, महागुणी अति कहेवरावेजी,
हेरुक गामना जे पिनाकीया, मयाचंद भावचंदजी,
अति मधुरी पिनाकी वजाडे, सुणे प्रभु आनंदकंदजी,
अमृत कुंडली ने ढोलकी, वजाडी अनुपम सारजी,
भगवानदास करेंटी नौ अंगी लीलो जे सोमारजी,
वली जेह सहशनो हरियो तेहनी सराहना कीधीजी,
राजामान ग्वलेरी तणी पद्मावती—लाडांरसालजी,
ने रूपमती ते बाजबहादुरनी रूपवंती रसालजी,
रामकली ने अनारकली जे हुडकणी अकबर तणीयजी,
सुन्दर, देव्यां नानीने, करुणा गंभीर भणीयजी,
तुलसां जेह हुठकणी ते आवी छे अहीं बहुवारजी,
रूकको भाटणी ढोलक वगाडे, त्यारे रहे न कोईनु धारजी,
रूपवंती सुन्दर अति चंचल, करे टोक गंभीरजी,
मांगल्य करने सदा सर्वदा ढोल वजते अेहजी,
गानकरे गंभीर स्वरे महा मधुर लागे तेहजी,
अेणरीते संक्षेपमा कही, आप्या गुणी गायकनामजी,
श्रीमुखथी प्रमाण्या जेअने, अनुभवो अभिरामजी,

श्री हरिराय युग

(वि. सं. १६९७–१७७२)

श्री गोकुलेश के पश्चात श्री गुसाइजी के प्रपौत्र श्री हरिरायजी के युग का प्रारंभ होता है। आपके पिताका नाम कल्याणरायजी था। जन्म सं. १६४१ (ई. सं. १५९१) में हुआ था। आपके दीक्षागुरु श्री गोकुलेश प्रभु थे। बाल्यकाल से श्री गोकुलेश के संपर्क में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। श्री हरिरायचरण प्रकांड पंडित और समर्थ व्याख्याता तथा साहित्य संगीत एवं काव्य रचना में भी निपुण बन चुके थे। श्री गोकुलनाथजी की बहुतसी साहित्यिक रचनाअें आपने संपादन की थीं। आप अधिकतर गोकुल गोवर्धन इत्यादि संप्रदायके केन्द्रों में निवास करते थे तथापि आपने संप्रदायके प्रचारार्थ देशव्यापी यात्राओंसे मुख्यतः राजस्थान इत्यादि स्थलों में यात्राएँ की थीं, इनमें (१) गोकुल, (२) सावली, (३) डाकोर, (४) जंबुसर (५) जेसलमेर, (६) नाथद्वार (७) खीमनोर इन स्थलोंमें दीर्घ समय तक निवास किया गया था, जिनमें श्री हरिरायजी की बैठक कही जाती हैं।

कुछ समयांतर संवत १७२६ में जब मोगल सम्राट औरंगजेब ने मथुरा, गोकुल, वृन्दावन के मंदिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिये थे तब श्री नाथजी का देव-विग्रह भी गुप्त रीति से उसी काल में गोवर्धन से मेवाड ले गये थे। उसी अरसे में द्वितीयपीठ के (आपके सेव्य स्वरूप) श्री विट्ठलनाथजी का स्वरूप तथा श्री नवनीत-लालजी और तृतीय पीठ के श्री द्वारिकाधीश का स्वरूप भी ब्रज में उपद्रव के कारण मेवाड़ में सुरक्षित स्थल में पधराये गये थे।

आप भूतल पर १२५ वर्ष तक विराजमान रहे थे। जिनके अंतिम ४५ वर्ष मेवाड में ही सेव्य स्वरूप की सेवामें और संप्रदायको प्रणाली बद्ध करने में तथा साहित्य संगीत की भावनामय रचनाओं और ग्रन्थ संपादन करने में व्यतीत हुअे थे। आपकी ब्रजभाषामें तथा संस्कृत ग्रन्थ रचनाएँ संख्याबद्ध प्राप्त होती हैं। इस रचनाओं ने संप्रदाय के अतिरिक्त हिंदी साहित्यमें भी अमरता प्राप्त की है।

अष्टछाप और तत्पश्चात् के आपके पूर्व कीर्तनकारों की रचनाओं को संप्रदायकी कीर्तन प्रणाली में ऋतु तथा समयअनुसार आपने नियमबद्ध की किन्तु प्रत्येक उत्सव तथा त्यौहार के दिनों में उसी भावनाकी रचनाओंकी जहां जहां त्रुटियाँ थीं अथवा विधर्मिओं के उपद्रव से ब्रज छोड़ने पर कुछ साहित्य नष्ट हो जाने पर इस त्रुटियों को आपने अष्टछापकी परंपरा अनुसार के रागों में तथा तालों

में लगभग सातसौ पदों की रचनाकर उसी भावना अनुसार गान करके संप्रदायकी ऋतु ऋतु अनुसार तथा समय समय अनुसार कीर्तन प्रणाली को व्यवस्थित करके नियमबद्ध करने का आपका ही श्रेय है।

आपके समय तक अष्टछाप परंपरा की गानशैली तदनुसार प्रवाहित रही। आपके गाये हुओ रागों की संख्या भी आपके पूर्व कीर्तनकारों के गाये हुओ रागों की संख्या की मर्यादा में ही रही है। आपकी रचनाओं की शैली भी पूर्व कीर्तनकारों के गाये हुओ रागों की बंदीशोंमें प्राप्त होती है। इसलिये यहाँ अलगसूची देने की आवश्यकता नहीं है। आपके पद रचनाओं में रसिक, रसिकदास, रसिकप्रीतम तथा हरिदास की छाप प्राप्त होती है।

श्री हरिरायजी के पूर्व ही सम्प्रदायकी संगीत कीर्तन प्रणाली समयऋतु और उत्सवानुसार नियत हो चुकी थी परन्तु कहीं-कहीं नित्य क्रम, ऋतुक्रम, जन्मोत्सव तथा त्यौहारादि कीर्तन प्रणाली में स्वयं रचना करके आवश्यक पूर्ति की। जैसे नौरात्रिके नौ दिनोंमें गाये जाने वाले नौ विलास के पदों इत्यादि अनेक पदों की भावनामय पूर्तिका श्रेय आपहीको है। बारह मास के नित्य और नैमित्तिक सेवा प्रणाली के उत्सव भी आपके समयमें ही व्यवस्थित और नियत हुए। प्रत्येक दिनकी सेवा का रहस्य रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी भगवदलीला की भावनानुसार प्रगट करने में आपकी अमूल्य देन है।

छप्पन भोग:–सम्प्रदायके उत्सवोंमें 'छप्पन भोग' का एक महाउत्सव माना जाता है। जिनको सप्त-स्वरूपोत्सव भी कहा जाता था क्योंकि सातों पीठके सातों स्वरूप एक ही स्थान पर विराजित होते हैं और अगणित-सामग्री का भोग लगाया जाता है। सर्व प्रथम यह उत्सव श्री विट्ठलनाथजी ने जतीपुरा (गोपालपुर) में किया था। कहा जाता है कि दूसरा भी सात स्वरूपोत्सव उन्हीं के समय में हुआ और तीसरा छप्पन भोग का उत्सव श्री गोकुलेश प्रभुने अपनी ९२ वर्ष की आयु में किया था, ऐसी मान्यता है।

छप्पन भोग के उत्सवमें वर्षभरके मुख्यतः उत्सवोंको भावना भी की जाती है। श्री हरिरायजी के समय में यह उत्सव क्रम भी नियत हो चुके थे। इस उत्सव में सात पीठों के सात निधि-स्वरूपों और अष्ट-समय दर्शनकी भावना का रहस्य माना जाता है। असल में मूल छप्पन भोग का आधिदैविक स्वरूप जहां सप्त-स्वरूप विराजित होते हैं वहाँ प्रगट होता है। इसीलिये सप्तस्वरूपोत्सव भी कहा जाता था किन्तु आजकल सप्तस्वरूप छप्पनभोग के स्थान पर सम्प्रदायके किसी भी मंदिरमें अन्नकोट से अधिकाधिक मात्रा में सामग्री का भोग धराने की प्रथा अधिक दिखाई देती है। इस प्रकार का छप्पनभोग सम्प्रदायकी मूल भावना से कितना सुसंगत है, वह मर्मज्ञ समझ सकते हैं। श्री हरिरायजी के समयमें छप्पनभोग की जो भाव-

भावना प्रगट हो चुकी थी उनका कुछ आवश्यक विवरण निम्न प्रकार दिया जा रहा है।

राग और भोग (सामग्री) तथा शृंगार यह तीनों सम्प्रदायके उगमसे अंगभूत माना जाता है। राग प्रकरणमें ५६ रागोंकी सूची दी जायेगी। यहां पर राग संख्या के साथ-साथ ५६ प्रकारकी सामग्री का जो भोग लगाया जाता है जिसको 'छप्पन भोग' कहा जाता है। सर्वप्रथम छप्पन भोग जो कि श्रीमद् विट्ठलेश्वर प्रभुके समयमें हुआ था किन्तु व्यवस्थित रूपसे राग और भोग इन दोनोंका ओतप्रोतता श्रीमद् हरिराय महाप्रभु के समयसे दष्टिगोचर होने लगी।

'छप्पन भोग' का भावात्मक स्वरूप अेवं छप्पन उत्सवों का संबंधादि का यहाँ कुछ विचार करेंगे।

(१) छप्पन भोग के उत्सव के रोज एक ही दिन में ५६ प्रकारकी सामग्री का जो भोग धराया जाता है, उसीको छप्पन भोग कहा जाता है।

(२) बारह मासके उत्सवों में जो जो सामग्री धराई जाती है वह सभी उत्सवों की सामग्री उसी रोज धराई जाती है। अतः वर्ष भर के उत्सवों की सूची निम्नप्रकार मानी जाती है।*

(१) जन्माष्टमी (२) चंद्रावतीजीका उ. (३) ललिताजीका उ. (४) राधाष्टमी (५) दान अेकादशी (६) वामन जयन्ति (७) सांझी प्रारंभ (८) कोटकी आर्ति (९) सांझी समाप्ति (१०) नवरात्रि पर्व (११) दशहरा (१२) शरद पूर्णिमा (१३) धन तेरस (१४) रूप चतुर्दशी (१५) दीपमालिका (१६) गोवर्धनपूजा (१७) अन्नकूट (१८) भाईदूज (१९) गोपाष्टमी (२०) प्रबोधिनी (२१) श्री गिरिधरजीका उ. (२२) श्री गोविंदराय जी का उ. (२३) श्री बालकृष्णजी का उ. (२४) श्री गोकुलनाथजी का उ. (२५) श्री रघुनाथजीका उ. (२६) श्री यदुनाथजीका उ. (२७) श्री घनश्यामजी का उ. (२८) श्री गुसांइजी का उ. (२९) चारोंघटा (सातकाल की) (३०) मकर संक्राति (३१) श्री दामोदरदासजी का उ. (३२) वसंत पंचमी (३३) होरी दंडारोपण (३४) श्री नाथजी का पाटोत्सव (३५) श्री मथुरेशजी का पाटो. (३६) कुंज एकादशी (३७) बगीचा (३८) डोलोत्सव (३९) द्वितीया पाट (४०) संवत्सर (४१) रामनवमी (४२) श्री महाप्रभुजी का उ. (४३) अक्षय तृतीया (४४) नृसिंह जयंति (४५) गंगा दशहरा (४६) स्नान यात्रा (४७) रथ यात्रा (४८) कसुंभा छठ (४९) हिंडोला (५०) ठकुरानी तीज (५२) नाग पंचमी (५३) पवित्रा अेकादशी (५४) पवित्रा द्वादशी (५५) रक्षाबंधन (५६) छठीको उ.

---

* देखिये वैश्वानर" मासिक ई. स. १९६१ पृष्ठ-१० लेखक : काशीरामजी शास्त्री

(३) इनके अतिरिक्त सम्प्रदायकी भावदृष्टि से निम्न भावना भी मानो जाती है।

सम्प्रदाय के नित्य सेवा क्रम में हमेशा सातबार भोग लगाया जाता है। और श्री गोवर्धनधरण तथा अन्य सात मुख्य स्वरूप मिलकर आठ स्वरूप विराजमान हैं। यह आठों स्वरूपों को दिन में ७ बार भोग आते हैं। अतः ८×७=५६ की संख्या छप्पन भोग की भावनासुसार आज भी सुप्रसिद्ध है।

(४) अन्य लीलात्मक भावना यह भी है कि छप्पन भोग का मनोरथ श्रीवृषभानजी ने किया था। श्री नंदरायजी और श्री जसोदाजी श्री ठाकुरजी तथा कुटुंबजनों को साथ लेकर श्री वृषभानजी के भवन (बरसाना) में भोजनके लिये निमंत्रण दिया गया और श्री नंदरायजी सभी ब्रजवासियों के साथ श्री राधिकाजी की सगाई (विवाह) के महान अवसर का जो आयोजन किया था जिसका वर्णन "गदाधरजीने" ने निम्न पद में किया है।

"श्री वृषभान सदन भोजनको नंदादिक मिलि आये हो"

आपके समय से ही छप्पन भोग, शब्द का रूढ़ अर्थ में प्रचार होने लगा तत्पूर्व सात स्वरूपोत्सव कहा जाता था।

सम्प्रदायके आवश्यक कीर्तनोंकी पूर्ति करनेमें आपके पश्चात् गो. श्री व्रजपतिजी हैं तथा गो. श्री व्रजपतिजी का जन्म सं. १६९२ में हुआ था। आपकी रचनाके बहुतसे पद कीर्तन प्रणाली में गाये जाते हैं।

गो. श्री व्रजाधीशजी महाराज का जन्म सं. १६९७ में हुआ था। अष्टछापीय परंपरानुसार आपकी रचनाके संख्याबंध पद प्राप्त होते हैं, जो आजभी गाये जाते हैं।

श्री हरिराययुगके समयके उपर्युक्त दो समर्थ वाग्गेयकारों बाद भी द्वारकेशजी महाराज का ही योगदान कहा जायेगा।

द्रुपद

अष्टछाप के समय से श्री हरिराय चरण के समय तक द्रुपद गान ही प्रचलित था। द्रुपद शैली का गान उत्तम स्वरज्ञानी और राग ज्ञानी से ही साध्य हो सकता था। आलाप गान करने वाले गायक द्रुपदिया कहे जाते थे। अकबर शाह के दरबारों में जो गायक थे वे सभी द्रुपदिया ही थे। द्रुपद गान ख्याल गायन से अधिक विस्तृत होता है। स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग इस प्रकार इसके चार भेद होते हैं। द्रुपद गान को हिंदुस्तान का मर्दानी और जोरदार गायन कहते हैं। इनमें वीर, शृंगार और शान्त रस प्रधान होते हैं। द्रुपद का स्थान भारतीय संगीत में कितना उच्च प्रकार का माना जाता है? "संगीत रत्नाकर" जैसे प्रमाणभूत ग्रन्थ के चतुर्थ प्रबंधाध्याय में लिखा है कि–

शुद्धरछाया लगश्चेति द्विविधः "सूड" उच्यते ।
एलादिः शुद्ध इत्युक्तो ध्रुवादिः 'सालगो" मतः ।।३१२।।
आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठ प्रति मण्ठनिसारुकाः ।
अडु तालस्ततो रास एकतालीत्यसौ मतः ।।३१६।।

आगे चलकर इसी प्रकरण में ही कहा गया है कि

रासको रासतालेन स चतुर्धा निरुपितः ।:
विनोदो वरदो नन्दः कम्बुजश्चेति शार्ङ्गिणा ।।
आलापान्तध्रुवपदाद्विनोदः कौतुके भवेत् ।।३५३।।
ध्रुवादालापमध्यात्तु वरदो देवतास्तुतौ ।
आलापादेर्ध्रुवपदात् कम्बुजः करुणे भवेत् ।।३५४।।

इसमें "आलापान्त ध्रुवपदात्", "ध्रुवादालापमध्यास्तु" और "आलापादेर्ध्रुवपदात्" ये शब्द द्रुपद के आलाप का समर्थन करते हैं। आलाप की आवश्यकता पर द्रुपद गायन में विशेष झोक दिया गया है।

तदुपरान्त १२वीं सदी के भावभट्ट पंडित रचित "अनूप संगीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ में द्रुपद की व्याख्या निम्न प्रकार दी गई है–

"गीर्वाणमध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचत्तुर्वाक्यसंपन्नं नरनारी कथाश्रयम् ।।
शृंगाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयुगकं च वा ।।
प्रतिपादं यम बध्यमेवं पाद चतुष्टयम् ।
उद्ग्रावध्रुवका भोगान्तरं ध्रुव पदं स्मृतम् ।।"

संस्कृत मिश्रित मध्यप्रदेशीय भाषा साहित्य संपूर्ण हो तथा जिसमें स्त्री-पुरुष संबंधी कथा हो, शृंगार-रस पूर्ण हो, जिनके पद राग लाप से पूर्ण हो तथा चरण के पदान्त में तुक बंदी हो उसको द्रुपद कहते हैं। जिनमें 'रागालापपदात्मकम्" शब्द से आलाप की विशेषता सिद्ध होती है।

वदतिरिक्त संगीत के विद्वानों ने द्रुपद गायन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। यही नही परन्तु इस गायन को अन्य गान शैलियों से श्रेष्ठ कक्षा में दिया गया है। इस संबंध में यहां केवल "लक्ष्यसंगीत" एवं "अभिनवराग मंजरी" के कर्त्ता पं. भातखंडेजी ने स्पष्ट कहा है कि "द्रुपद गायन पिछले सैका के आरंभ तक अत्यन्त लोकप्रिय था। हाल भी उनको शुद्ध और सन्माननीय गिना जाता है। परन्तु पिछले १००-१५० वर्षों में ख्याल गायन लोगों को अधिक प्रिय होने लगा इसलिए द्रुपद गायन की पीछे हट होती रही। द्रुपद गायन का पुनः प्रचार और लोकप्रिय हो ऐसी सहज इच्छा है।"

आधुनिक समय जब गायन पीछे हट रहा है, अब द्रुपद गायन के घराने भी नष्ट होते जा रहे हैं तथा द्रुपद गायन से लोकरुचि भी कम होती जा रही, ऐसे समय में यह पवित्र गायन की परम्परा रखनी हो तो इसका पुनरुद्धार होना चाहिए। पुष्टि सम्प्रदाय के मंदिरों का द्रुपद की परम्परा जीवित रखने में कम योगदान नहीं है। जिसका श्रेय अष्टसखादि महान कीर्तनकारों को दिया जायेगा। सम्प्रदाय की परम्परा में आज भी हजारों की संख्या में यह पद साहित्य दृष्टिगत होता है। जिसका गान आज भी मन्दिरों में होता रहा है। यह द्रुपद शैली का गायन चौताल, सुल ताल, धमार, आड-चौताल, चर्चरी, तीव्रा आदिताल इत्यादि तालों में गाया जाता है।

द्रुपद गायन की पद्धति के प्राचीन काल में चार वर्ग माने जाते थे। (१) कृष्ण मत मुजब "गौबर हारी" बानि (२) शंकर मत की "नौहारी" बानि (३) भरत की "डागुरी" बानि (४) हनुमत की "खंडारी" बानि कही जाती थी किन्तु इस प्रकारों की बानियों का उगम कहां से और किस समय में हुआ यह चर्चास्पद है। कहा जाता है कि "गौबरहारी" बानि पुष्टि सम्प्रदाय की परम्परा की है, जिसका उगम श्री कुंभनदासजी के समय से है। "गोबरहारी" नाम "गोवर्धन हरि" नाम का अपभ्रंश हुआ है, श्रीनाथजी की सेवा में गोवर्धन पर्वत पर अष्टछाप के संगीत का उद्भव होने के कारण गोवर्धन के साथ हरि नाम जोड़कर गोवर्धन हरि की बानि कहा करते थे।

दूसरा यह भी है कि प्राचीन समय से व्रज में यह रिवाज है कि दीवाली के दूसरे दिन प्रातः गायके गोबर का छोटासा गोवर्धन बनाकर उसकी पूजा करते हैं, भोग लगाते हैं और आरती भी करते हैं। यही नहीं उसी समय से वैष्णव मन्दिरों में आज भी गोबर का गिरिराज बनाकर विधवत् पूजा की जाती है। अतः कुछ लोग गोवर्धन का गोबर नाम कहकर साथ में हरि (श्रीनाथजी भगवान) नाम जोड़कर "गोबर हरि" नाम प्रचार में आने की संभावना अस्थानीय नहीं है।

दूसरा मत यह है कि प्राचीन काल में शुद्धा, भिन्ना, वैसरी, गौडी, साधारणी प्रत्यादि गीति को गाने की जो भिन्न भिन्न शैलियां प्रसिद्ध थीं उन्हीं शैलियों का समयान्तर में यह चार बानियों में परिवर्तन माना जाता है। प्रत्येक गायक अपने पूर्वजों की वाणी से अभ्यास किया करते थे ऐसा माना जाता है, किन्तु आजकल इन बानियों का कोई महत्व रहा नहीं है । आजकल की द्रुपद परम्परा का उगम अष्टछाप के समय तक ले जा सकते हैं जो राजा मानसिंह के समकालीन समय है । उस समय से द्रुपद की परम्परा देवालय और राज्यालय में ऐसे दो विभागों में प्रचलित होने लगी ।

पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन तथा कीर्तनकारों की ओर कुछ कहना उचित समझता हूं । आजकल के कुछ कीर्तनकार लोग इस गायन में ख्याल-अंग की गायकी का प्रयोग करते हैं । यह शोचनीय है । असल में अष्टछाप की गान परम्परा एक होते हुए भी श्री हरिराय युग के पश्चात् मुख्यत: उनका तीन विभागों में विभाजन दृष्टिगत होने लगा–(१) नाथद्वारा-कांकरौली, (२) गोकुल-मथुरा–कामवन-काशी, (३) अहमदाबाद-वड़ौदा-सूरत तथा जामनगर-जूनागढ़-पोरबंदर इत्यादि इन तीन विभागों को हम अष्टछाप के तीन घराने कहना उचित समझते हैं । इन तीनों घरानों में अपनी-अपनी कुछ विशिष्टता दिखाई देती थी । इन स्थानों में व्यवसायी और अव्यवसायी उत्तम कीर्तनकारों की नियुक्ति की जाती थी । मन्दिरों के अधिपति गोस्वामी महाराज भी संगीत के उत्तम ज्ञाता होने से व्यवसायी कीर्तनकारों की शिष्य परम्परा एवं इनके परिवार की परम्परा को वर्षों तक पोषण देते रहे । किन्तु अन्तिम पचास वर्षों से कीर्तनकारों को प्रोत्साहन, पोषण और गुजरान के अभाव के कारण यह परम्परा नष्ट होने लगी । फलत: व्यवसायी कीर्तनकारों के परिवार लोग अन्य व्यवसाय में जाने लगे । यदि अष्टछाप की द्रुपद परम्परा को जीवित रखना हो तो हाल भी कुछ गिनती के बचे हुए उत्तम कीर्तनकारों का सहकार लेकर शिष्यगण तैयार करना आवश्यक और अनिवार्य कहा जावेगा । पुष्टिमार्गीय हवेली संगीत की परम्परा हम श्री हरिराय युग तक ही ले जा सकते हैं । क्योंकि तत्पश्चात् किसी के भी पद गान सम्मिलित न होने की लक्ष्मण रेखा अंकित की हुई दिखाई देती है । अष्टछाप संगीत की विशिष्टता भी इसी कारण से सम्मानित रही है ।

द्रुपद शैली के गान की सीमा भी यहां सीमित हो जाती है और ख्याल, ठुमरी, टप्पा, गजल, कव्वाली इत्यादि शैलियों के घराने का आरम्भ होता है । सद्भाग्य से हमारे वैष्णव मन्दिरों के उपरान्त रामपुर, उदयपुर, जयपुर जैसे स्थलों में द्रुपद गान की प्राचीन परम्परा हरिराय युग तक कही जायेगी और पश्चात् ख्याल युग का आरंभ होता है। जो विगत शताब्दी तक द्रुपद शैली की झांकी दृष्टिगत होती रही किन्तु तत्पश्चात् की स्थिति विचारणीय ही नहीं किन्तु शोचनीय कही जायगी ।

श्री द्वारकेशजी महाराज का परिचय

आपका जन्म वि. सं. १७५१ में हुआ था। आपने सेवा प्रणालीकी भावना पर महत्वका टिप्पण लिखा है। इसलिये आपको भावनावाले द्वारकेशजी से पहिचानते हैं। आपने ज्योतिष शास्त्र और संगीतके राग-तालका उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। आपके रचित पद सम्प्रदायकी कीर्तन प्रणालीमें गाये जाते हैं। आपकी पद रचनाओंमें सेवा, सिंगार और विविध उत्सव त्योहारोंकी भावनाएँ अधिक दिखाई देती है।

(१) श्री कृष्ण जन्मपत्रिका (२) श्री वल्लभाचार्यजीकी तथा (३) श्री विट्ठलेश्वर की जन्मपत्रिकाओंके राग–सारंग, ताल-चर्चरी की सुंदर बंदिशमें रचना की है जो क्रमशः निम्न प्रकार है।

(२) "धन्य हो नंद जग वंदते सुकृत फल आज व्रजचंद आनंद पूरन सूदठ"

(२) तत्व गुन बान भुवि माधवा सित तरणि प्रथम भगवद दिवस प्रगट लक्ष्मन सुवन"

(३) चक्षुमुनि तत्व विधु असित निधियाम, गुण समय प्रकट वल्लभ तनुज"

इसके अतिरिक्त आपके लगभग ३० से अधिक पद लगभग १० रागोंमें अष्टछाप परंपरानुसार गाये जाते हैं।

किन्तु आपकी विशिष्ट रचना "मूलपुरुष" है। २२ तुककी छंद बद्ध रचना बिलावल रागमें प्रचलित है। इनमें श्री वल्लभाचार्यजी की संक्षिप्त जीवनी तथा वंशावली का ऐतिहासिक वर्णन किया गया है। मूलपुरुष की यह रचना वैष्णवोंके घर घरमें आजभी प्रचलित है। आपकी रचनाओंमें रागमाला भी प्राप्त होती है। जो इस प्रकार है।

"ए मन मान मेरे कह्यो काहे कों रिसानी प्यारी तू। प्रथम री भैरों गुन जन गाइये याही ते सुधराई होतु।। २।। मालकोस की तानन ले-ले राजत रूप बिहाग। 'द्वारकेश' प्रभु वसंत खिलावत चाही तैं बठत सुहाग।।२।।

श्री द्वारकेश युग

सम्प्रदायकी कीर्तन प्रणाली की दृष्टि से श्री हरिरायजुगके पशचात् यहां संवत १७७३ से १८२५ तक का समय "श्री द्वारकेशयुग" का माना गया है। इस युग का समय द्रुपद शैलीका परिवर्तन होकर ख्याल शैलीका आरंभ समय कहा जायगा। कहा जाता है कि आधुनिक ख्याल पद्धतिका उगम इस समयके "सदारंग" और "अदारंग" के समयसे हुआ है।

सदारंग

सदारंग का मूल नाम न्यामतखां था । वे उत्तम बीनकार थे। विक्रम की ८वीं शती के अन्तिम भागमें (इ. स. १७१६-१७४८) वि. सं. १७९२-१८०४ तक दिल्ही के शहनशाह महमदशाह का राज्य था । इसी समयमें न्यामतखां ने सदारंग उपनामसे सैकड़ों चीजोंकी रचना कर, आधुनिक ख्याल पद्धति को जन्म दिया। कहा जाता है कि वे तानसेन की पुत्री के खानदान के दशवें व्यक्ति थे। पिताका नाम लालखां था। न्यामतखां महम्मद शाहके आश्रित थे। अेक दिन बादशाहने सारंगी के साथ बीन बजानेको कहा तब न्यामतखांने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि मैं खानदानी बीनकार हूँ। फलतः बादशाहने दरबारसे निकाल दिया और न्यामतखांको अेकांत जीवन बिताना पड़ा।

कहा जाता है कि ख्याल–गायन का मूल उगम अमीर-खुसरोने सन् १२५० से १३२५ तकके समयमें किया था। किन्तु उनका यह कार्य सफल नहीं हुआ पश्चात् सुल्तान हुसेन शर्फी, बाज बहादूर चंचलसस्सि इत्यादिने इसे आगे बढानेकी चेष्टाकी किन्तु उन्हेंभी सफलता न मिली, इस असफलता का न्यामतखांने विचार किया कि जबतक कवितामें बादशाहका नाम न जोड़ दिया जाय तब तक यह गायन प्रचलित नहीं हो सकेगा। अतः न्यामतखांने अपनी कविता में अपना उपनाम सदारंग रखकर इसके साथ महम्मद शाह का नाम जोडकर "सदारंगीले महम्मद शाह" का नाम कवितामें रखकर बादशाह को सुनाया। बादशाह वह दिलचस्पी से सुनने लगा। सदारंग ने अपने शागीर्दों से यह चीजें तैयार कराइ और वे बादशाहको सुनाने लगे। पश्चात् न्यामतखां के पूर्व अपराधोंको बादशाहने क्षमा करके अपने दरबारमें आदरपूर्वक रख दिया।

इस प्रकार ख्याल प्रचारके कारण ध्रुपदियों में बातें चलने लगीं और कहने लगे कि इससे संगीतका अपमान होता है तथा इन चीजोंको वो जनाना संगीत कहने लगे, क्योंकि यह चीजें बहुतसी गायिकाओंमें भी फैल चुकी थीं। जोकि यह चीजें सदारंगने अपने खानदानके लिये नहीं किन्तु बादशाहको खुश करनेके लिये बनाइ थी। तथापि दिनप्रतिदिन यह गायकी जनसमाजमें अधिक पसंद आने लगी और धीरे-धीरे गायकोंको राज्याश्रय मिलता रहा। भारतके विविध राज्योंमें गायक और गायिका कों पोषण मिलता रहा। इन राज्योंके कलावंत गायकोंने उत्तम ख्यालोंकी रचना कर अपनी अपनी बंदिशों में कला प्रदर्शित करने लगे। फलतः भिन्न भिन्न घरानों का जन्म हुआ।

अदारंग

न्यामतखां के फिरोजखां और भूपतखां नामके दो पुत्र थे। अदारंग उपनाम फिरोजखां का था और भूपतखां का उपनाम महारंग था। पिताके पश्चात् इन दोनों पुत्रों ने उपर्युक्त उपनाम से ख्यालोंकी रचना करके इस पद्धति को आगे बढ़ाकर संगीत क्षेत्र की सेवा की।

अेक ओर "सदारंग" "अदारंग" की ख्याल रचनाका आरंभ हो चुका था यही नहीं भारत के कुछ बड़े रजवाड़ोंमें भी उसका प्रचार गायक और गायिकाओं द्वारा हो रहा था, दूसरी ओर अष्टछापकी स्थापना के समय से (वि. १६०८) जो हवेली-संगीत के विकासका आरंभ हो रहा था; वो श्री गोकुलेश और श्री हरिराय युग में क्रमशः बढता रहा। तदपश्चात् ब्रजमंडल, राजस्थान और गुजरातादि प्रान्तों में मुख्य सात पीठों के उपरान्त अन्य मंदिर-हवेलियों की स्थापना में होती रही।

श्री द्वारकेश युग में जामनगर और जूनागढ़ में राज्योंकी सहायतासे मंदिरों की जो स्थापना हुई जिसका विवरण संक्षिप्त में इस प्रकार है।

जामनगर :–

विक्रमकी १९वीं सदीके प्रारंभमें श्रीवल्लभजी महाराज का जामनगर में आगमन हुआ था। १८१४ में आप स्थिर हुअे। पश्चात् श्री वल्लभजी महाराजके द्वितीय पुत्र श्री गिरिधरजी महाराजने सं. १८२७ में नया मंदिर (हवेली) बनवाकर श्री मदनमोहनजी को पधराये और प्रणाली अनुसार सेवाक्रम आरंभ किया। इस मंदिरके दरवाजे के पास अेक शिलालेख है। जिनमें कीर्तनकार पुरुषोत्तम विप्रका एवं मुख्य कीर्तनकार गोकुलदास का भी शिलालेख में उल्लेख किया गया है। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस हवेलीसे आरंभसे ही मुख्य कीर्तनकार और अन्य कीर्तनकार नियत किये गये थे।

जूनागढ़ :–

नवानगर यानि जामनगर की हवेली की स्थापना के साथ मध्य सौराष्ट्र के चीतल गाँव में श्री वल्लभजी महाराज के तृतीय पुत्र श्री माधवरायजी जो श्री मदनमोहनलालजी की सेवा करते थे। आपने चीतल और आसपास के गांवों में संख्याबद्ध वैष्णव को सेवक किये थे। और कीर्तनादि सेवा का प्रचार भी कर रहे थे। बाद में श्री माधवरायजी का सं. १८३६ में जूनागढ़ में आगमन हुआ। उस समय नवाब महोल्लनखान की हकुमत थी। किन्तु दिवान अमरजी की विनंती से आप पधारे थे। और पंचहारडी के सरकारी वरंडामें आपका मुकाम दिया था। वहाँ आपके चमत्कारों से आपकी महत्ता बढने लगी। स्वयं नवाबकी भी आपके प्रति सद्भावना उत्पन्न हुई और दिवान अमरजी को उसी स्थान पर मंदर बनाने का

हुकुम किया तथा निभावके लिये दो गाँवभी भेंट किये। मंदिर सिद्ध होने पर श्री माधवरायजी महाराज ने श्री गुसांइजी का सेवक दया भवैया के ठाकुर श्री मदन मोहनजी को वैशाख शुक्ल १३ को पाट बेठाये।

इस प्रकार मंदिरों की स्थापना विविध स्थलों पर होने के बाद सात पीठों के गुरुगृहों के अन्तर्गत इन मंदिरों में सेवा प्रकार का क्रम भी नियत हो चुका था। अधिकतर नित्य और त्यौहारोत्सव की सेवा का क्रम सात पीठों के अंतर्गत गृहों में अेकसाही होने से कीर्तन संगीत प्रणाली का क्रम भी अेकसाही रहा है। यह अष्टछापीय भक्ति संगीत की परंपरा समझने के लिये प्रथम नित्य सेवा क्रम की गान प्रणाली और त्यौहारोत्सव की गान प्रणाली का क्रम ध्यान में लेना आवश्यक है जो निम्न प्रकार है।

कीर्तन-गानका नित्य क्रम :—

पुष्टिमार्ग के मंदिरों की कीर्तन गान प्रणाली का बंधारण आपके युग में ही नियमित हो चुका था। सम्प्रदायकी गान प्रणाली नित्य और नैमित्तिक अैसे दो प्रकार में विभाजित है। सम्प्रदाय में नित्य लीला का सैद्धांतिक प्रकार मुख्य माना जाता है और नैमित्तिक लीला का क्रियात्मक आयोजन श्री विट्ठलेश्वर के समय से हुआ था। तथापि इसका व्यवस्थित रूप श्री हरिराययुग में ही माना जाता है।

नित्य और नैमित्तिक यह दो प्रकारोंमें सम्प्रदायकी सभी कीर्तन प्रणालीका समावेश होता है। किन्तु आपके युगमें ही अधिकतर कीर्तनोंके हस्तलिखित संग्रह बनने लगे थे। जो नित्य और नैमित्तिक ये दोनों स्वरूप के आधार पर यानी संगीत और साहित्यकी दृष्टिसे अलग-अलग वर्गीकरण वाले संग्रह ग्रन्थ प्राप्त होते है। कीर्तन गानकी दृष्टिसे संगीत–रस को प्रश्रय देने वाले संग्रहों में विशेषतः (१) नित्य (२) वर्षोत्सव और (३) वसंतधमार अैसे तीन विभागोंकी परंपरा दृष्टिगत होती है। जो अनुक्रमसे (१) नित्य कीर्तन संग्रह (२) वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह (३) वसंत-धमार कीर्तन संग्रह नामसे प्रसिद्ध हो चुके हैं।

(१) नित्य कीर्तन संग्रहमें श्री बालकृष्ण प्रभुकी नित्य लीलामें जगायवेसे पौढवे तकके पद गान हैं। (२) वर्षोत्सव कीर्तन संग्रहमें वर्षभरके उत्सव, जन्म-बधाई तथा त्यौहारोंके पदोंका समावेश किया गया है। (३) वसंतधमार संग्रह में श्रीकृष्ण की वसंत खेल अेवं होरीके खेलकी लीलाका तादृश वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अष्टछापीय संगीत की दृष्टिसे उपर्युक्त तीन प्रकार हैं किन्तु साहित्य की दृष्टिसे देखा जाय तो (१) नित्य सेवागान (२) वर्षोत्सव बधाइ (३) पर्वत्योहारगान (४) लीलात्मक गान (५) प्रकृति सौंदर्यगान (६) भावात्मक रसगान (७) विनय दीनतादि आश्रयगान और (८) गुरुनिष्ठादि प्रकीर्णगान अैसे आठ विभागोंमें सुप्रसिद्ध है। किन्तु यहां कीर्तन संगीत प्रणाली संबंधित चर्चा उपयोगी होगी।

श्रीमद वल्लभाचार्यजी ने स्वमार्गीय सेवा विधि का नव निर्माण करते समय प्रथम अष्ट-समय की नित्य सेवा का आरंभ किया था उसी समय से नित्य सेवा क्रमके साथ-साथ नित्य लीला प्रसंगके कीर्तनोका प्रथम उद्‌भव होने से नित्य कीर्तन संग्रह को प्रथम स्थान माना जाता है।

नित्य क्रम के अतिरिक्त वर्ष भरके पर्व त्यौहारों की भावना अनुसार श्री विट्ठलेश्वर ने नित्य सेवा क्रम के उपरान्त अधिक में जो क्रम निर्माण किया तद्‌नुसार पर्व त्यौहारोमें जो कीर्तन गाये जाते हैं उसको वर्षोत्सवमें समावेश किया गया है। तदुपरांत जन्म बधाइके उत्सवों की सेवाक्रमका समावेश श्री गोकुलेशके समय तक वर्षोत्सवमें नियत हो चुका था। इस क्रम में गाये जाने वाले पदोंके संग्रह को वर्षोत्सव पद संग्रह कहते है।

वसंत पंचमीसे लेकर डोल तक त्यौहारों में जो पद गाये जाते हैं इनका समावेश वसंत धमार कीर्तन संग्रहमें किया गया है।

श्री हरिराय युगमें ही उपर्युक्त (१) नित्य (२) जन्मोत्सव अेवं पर्वोत्सव तथा (३) वसंत धमारके पदोंके संबंधित यह तीनों प्रकार हम देख चुके। पश्चात् किस समय इन तीनों प्रकार के कीर्तनोंको सेवाक्रमके अनुसार गाया जाता है उसका विचार करेंगे।

नित्य सेवा विधिः–

प्रातःकालीन सेवा क्रम :–पुष्टिमार्ग की सेवा प्रातःकालीन तथा सायंकालीन अेसे दो विभागोंमें की जाती है। मंदिरोंमें प्रातःकालीन सेवाका समय पांच घंटाका और सायं कालीन सेवाका समय चार घंटे का माना गया है जो उत्सवादि दिनोंके विशेष क्रममें अेक-अेक घंटा और बढाया जा सकता है।

प्रथम श्रीजीको जगायवे के पहले प्रातः तीनबार शंखनाद होता है बादमें तीनबार घंटानाद भी किया जाता है। तद्‌पूर्व बडे स्थानोंमें (सम्प्रदायकी मुख्य पिठोमें) बीन (वीणा) वादन होता है। पश्चात् मुख्य कीर्तनकार यानी कीर्तन के मुखियाजी तानपूरा के साथ प्रथम गाये जानेवाले रागकी आलापचारी करते है। बादमें श्री वल्लभाचार्यजीका और श्री गुसांइजीका प्रातः स्मरणीय पद गान करते है। उसके बाद श्रीजीका जगायवेका अेक पद और कलेउके दो पद तथा श्री यमुनाजीका अेक पद उपरांत खंडिनाका अेक पद गानेकी प्रथा है। खंडिताका पद बाललीला और बधाई के दिनमें गाया नहीं जाता।

मंगलाभोग सरे :–"मंगल मंगलम् व्रजभुवि मंगलम्" यह श्री गुसांइजी रचित पद नित्य गाया जाता है: जिसकी अंतिम तुक दर्शन सन्मुखमें गायी जाती है। मंगला दर्शनमें ऋतु अनुसार अेक पद का गान किया जाता है। मंगलाके बाद

शृंगार के ओसरा में:–समयानुसार दो या चार पद अेवम् शृंगारके दर्शनमें अेक पद ऋतु और उत्सव अनुसार गाये जाते हैं।

ग्वालबोलें :–नित्य क्रममें धैयाका अेक पद तथा बधाइ और **वसंतधमार** के दिनों में तदनुसार।

ग्वाल के दर्शन में:–पलनाका अेक पद गाया जाता है। कहीं कहीं उराहनेका या माखन चोरीका पद गाने की प्रथा है।

राजभोग आये :–शीतकालमें घर भोजनके, उष्णकाल में छाकके और वर्षामें वर्षाकी छाकके चार पद गाये जाते हैं। बधाइके दिनमें बड़ी बधाई हो तो अेक, छोटी हो तो चार बधाइ तथा वसंत धमारके दिनों में वसंत धमारके पद गाये जाते हैं। उसी प्रकार राजभोग सरे अचवनको अेक पद तथा अेक बीरीको पद ऋतु एवं उत्सावनुसार गाया जाता है।

राजभोग दर्शन में:–ऋतु, शृंगार, बधाइ और त्यौहार अनुसार पद गाया जाता है।

सायंकालीन सेवाक्रम :––

भोग अेवम् संध्यार्तिके दर्शन में:–ऋतु, शृंगार, बधाइ उत्सवादि क्रमानुसार पद गाया जाता है।

शयन भोग आये :–दो पद ब्यारुके तथा दूधका अेक पद।

भोग सरे :–अेक बीरीका पद गाया जाता है। शयन दर्शनमें जहा सन्मुखमें बीरी आरोगते है वहा दर्शन सन्मुख प्रथम बीरीका अेक पद और बादमें अेक पद ऋतु तथा बधाइ, उत्सव क्रमानुसार गानेकी प्रथा है।

पोढ़वे में :–ऋतुनुसार अेक मानको और अेक पोठवेको पद तदपश्चात् आश्रयके पद श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांइजी के गाये जाते हैं।

और यहां दिन भरकी कीर्तन सेवा समाप्त होती है।

वर्षोत्सव प्रणाली

जन्माष्टमी की बधाई:–का आरंभ निधि के गृहों में याने बड़े ठिकाने में व्रज श्रावण वदी ४ (गुर्जर अषाढ़ वदी ४) के दिन से होता है। और छोटे मन्दिरों में पवित्रा एकादशीसे आरंभ होता है।

जन्माष्टमी के दिन जागवेसु झांझ पखावज के साथ प्रणालीनुसार दिनभर बधाई गाई जाती है।

बाल लीला:–जन्माष्टमी के दूसरे दिन से अमावस तक बाल लीला के पद गाये जाते हैं।

श्री राधाष्टमी की बधाई:–के पद भाद्र शुक्ल १ से अष्टमी तक (राधाष्टमी के दिन प्रणाली अनुसार) गाये जाते हैं।

दान के पद:–भाद्रो शुक्ल ११ से गुर्जर भाद्र व्रज आश्विन वदी अमावस तक गाये जाते हैं।

सांझी के पद:–गुर्जर भाद्र कृष्ण १ से अमावस तक भोग संध्या के समय गाये जाते हैं।

रास के पद:–आश्विन शुक्ल १ से गुर्जर आश्विन कृष्ण १ तक गाये जाते हैं (शरद पूर्णिमा के दिन मान और पोठवे के कीर्तन तक झांझ, पखावज के साथ प्रणाली अनुसार पद गाये जाते हैं।

नवविलास के पद:–आश्विन शुक्ल १ से ९ तक श्रृंगार में या संध्या समय में रोज एक पद गाया जाता है।

करखा के पद:–सस्त्र धरे उस रोज से दशेरा तक भोग संध्या के समय में गाये जाते हैं। (दशेरा के दिन झवारा धरे तब प्रणाली अनुसार झवारा का पद झांझ, मृदंग सहित गाया जाता है।)

अन्नकूट के पद:–अन्नकूट की बधाई अन्नकूट की बधाई में गोवर्धन लीला, गोवर्धन पूजा, एवं अन्नकूट के भाव के पदों का समावेश होता है। बड़े ठिकाने दशेरा से और छोटे मन्दिरों में गुर्जर आश्विन कृष्ण २ से अन्नकूट तक गाई जाती है।

(अ) **गाय खिलायवे के पद** (ब) **कान जगायवे के पद** (क) दीप मालिका के पद और (ड) हटरी के पद।

अन्नकूट की बधाइ में गोवर्धनलीला, गोवर्धनपूजा एवं अन्नकूट के भाव के पदों का समावेश होता है।

गुर्जर आश्विन शुक्ल ७ से क्रमश: (अ) भोग संध्या के समय (ब) शयन भोग आये (क, ड) सेन के दर्शन में गाये जाते हैं।

इन्द्रमान के भंग के पद:–अन्नकूट पीछे सप्तमी तक दिनभर गाये जाते हैं।

गोपाष्टमी:–के दिन से कार्तिक शुक्ल १० तक गाय चरायवे के भाव के पद गाये जाते हैं। (गोपाष्टमी के दिन प्रणाली अनुसार)।

प्रबोधिनी:–(का.शु. १२) के दिन अपने गृह की कीर्तन प्रणाली अनुसार। कहीं मंगला दर्शन में "गोविंद तिहारो स्वरुप निगम नेती नेती गावे" तथा शयन दर्शन में माहात्मृय के चारों पद तथा सब समय नित्य के भाव के पद गाये जाते हैं। प्रबोधिनी पीछे पूर्णिमा तक ब्याह के पद गाये जाते हैं।

व्रत चर्या के पदः–गुर्जर कार्तिक कृष्ण १ से मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा तक मंगला से श्रृंगार तक गाये जाते हैं।

हिलग के पद तथा **पनघट के:**–केवल टोडी राग के पद गुर्जर कार्तिक–व्रज मार्गशीर्ष वदी १ से अमावस तक राजभोग के दर्शन में गाये जाते हैं।

श्री गोकुलनाथजी की बधाईः–मार्गशीर्ष शुक्ल १ से सप्तमी तक गाई जाती है। कहीं-कहीं श्रीगुसांईजी की बधाई (श्री गसांईजी की बधाई में और आपके सात बालकों के उत्सवों में जन्माष्टमी की, श्री महाप्रभुजी की और श्री गुसांईजी की बधाई के पद गाये जाते हैं।) का भी शुक्ल १ से आरम्भ होता है। छोटे मन्दिरों में मार्गशीर्ष सुदी ९ से पन्द्रह दिन तक श्री गुसांईजी की बधाई गाई जाती है।

श्री गुसांईजी का उत्सवः–इस रोज प्रणालीनुसार बधाई के पद गाये जाते हैं।

पौष सुदी एकम से व्रज माघ कृष्ण अमावस तक मंगला, श्रृंगार में ललित, मालकौंस राग की खंडिता के पद तथा राजभोग आये घर भोजन के तथा दर्शन में तिलक के धनाश्री, आसावरी राग के पद तथा टोडी राग के पनघट के पद क्रमानुसार रागों में गाने की प्रथा है तथा सायंकालीन सेवा में नित्य के पद गाये जायेंगे।

वसंत बहार के पदः–माघ सूद १ से ४ तक गाये जाते हैं।

वसंत पंचमी से पूर्णिमा तक दिनभर वसंत राग के पद गाये जाते हैं। (वसंत पंचमी के रोज प्रणाली अनुसार वसंत के पद)।

माघ सु. १५:–होरी डंडा रोपन से राग बिलावल, धनाश्री, जेतश्री और सांझ को गौरी राग की धमार श्रीनाथजी के पाहोत्सव के अगले दिन तक गाई जाती है। कहीं-कहीं मंगला में और मान पोठवे में वसंत भाव के पद गाने की प्रथा है।

श्रीनाथजी का पाटोत्सवः–प्रणाली अनुसार धमार (धमार के कीर्तन के साथ डफ, उपंग, कीन्नरी चंग इत्यादि बजाये जाते हैं।) के पद गाये जाते हैं। आज रोजसे डोल तक सभी राग की धमारे समयानुसार गाई जाती है। केवल फाल्गुन सुद १२, कुंज एकादशी के डोल तक राजभोग में "सारंग" राग में तथा शयन के दर्शन में 'कल्याण' राग में डोल के पद गाये जाते हैं।

फाल्गुन सुद ८ से होली तक राजभोग एवं शयन में आरती होने के बाद होरी के ख्याल और रसिया गाये जाते हैं।

डोल के दूसरे रोज द्वितीया पाटः–के दिन प्रणाली अनुसार और तत्पश्चात श्री महाप्रभुजी की बधाई के आरंभ तक सभी समय में कुंज के भाव के पद समयानुसार रागों में गाने की प्रणाली है। 'नूर सारंग' राग अधिकतर इसी समय में गाया जाता है।

चैत्र सु. १:–के रोज राजभोग के दर्शन में "चैत्र मास संवत्सर पडवा बरस प्रवेश कियो है आज" सारंग राग का यह पद खास गाया जाता है ।

चैत्र सु. ३:–के रोज गनगोर के पद गाने की प्रथा है ।

चैत्र सु. ११:–से श्री महाप्रभुजी की बधाई का आरंभ होता है। आज से उत्सव तक श्रीमहाप्रभुजी के बधाई के पद उपरान्त जन्माष्टमी के बधाई के पद दिनभर गाये जाते हैं ।

व्रज वै. कृष्ण ११ श्री महाप्रभुजी का उत्सव:–आज रोज जगायवे से ही झांझ, पखावज के साथ कीर्तन गाये जाते हैं और दिनभर प्रणाली अनुसार बधाई के पद गाने की प्रथा है ।

उत्सव के दूसरे रोज से अक्षय तृतीय के पहले रोज तक बाललीला के पद समयानुसार रागों में गाये जाते हैं ।

अक्षय तृतीया वै. सु. ३:–के दिन प्रणाली अनुसार ।

आज से पूर्णिमा वै. शु. १५ तक राजभोग के दर्शन में खसखाने के पद सारंग और सामंत सारंग राग में गाये जाते हैं। और पश्चात् ज्येष्ठ शु. १५ तक दुपहर के पद, चंवन के पद और कुल मंडली के पद भी गाये जाते हैं ।

सांझ को भोज के दर्शन में खसखाने के उपरान्त जल प्यावे के भाव के भी कीर्तन सारंग और सामंत सारंग राग में गाये जाते हैं । संध्यार्ती में राग हमीर के संध्यार्ती के पद गाये जाते हैं ।

ज्येष्ठ सु. १ से १५ तक केवल राजभोग के दर्शन में ही सारंग राग में पनघट के पद होय और ११ से १५ तक दिनभर पनघट के भाव के पद समयानुसार राग में गाने की प्रथा है ।

गंगा दशमी:–के रोज विशेष में श्री गुसांईजी रचित (नमो देवी यमुने) यह श्री यमुनाष्ट पदी के उपरान्त गंगाजी के पद गाये जाते हैं ।

ज्येष्ठ सु. १५ स्नान यात्रा:–के दिन मंगला पहले श्री यमुनाजी के पद गान से झांझ-पखावज के साथ कीर्तन होते हैं । स्नान के दर्शन में टोडी राग में चार पद स्नानयात्रा के भाव के गाये जाते हैं । बाद में "नमो देवी यमुने" यह यमुनाष्ट पदी तथा श्री यमुनाजी के पद (४० पदों में से भी) गाये जाते हैं ।

स्नानयात्रा से रथयात्रा के पहले रोज तक मंगला श्रृंगार में सुहा-सुघराई राग की खंडिता के पद और राजभोग में घन-दामिनी के भाव के पद गौड सारंग राग में गाये जाते हैं एवं भोज संध्या में सोरठ राग के पद गाने की प्रथा है । शयन में भी इसी भाव के पद यमन, केदार, कानरा और अडाणा राग में गाये जाते हैं ।

अषाढ़ सु. २ रथयात्रा:–रथ के चार दर्शन में से तीसरे भोग तक बिलावल राग के पद और पश्चात् मल्हार राग की आलापचारी करके मल्हार राग के रथ-यात्रा के पद गाये जाते हैं। आज से पवित्रा एकादशी के पहले रोज तक दिनभर मल्हार राग के पद गाये जाते हैं।

पवित्रा एकादशी:–पवित्रा के दर्शन में पवित्रा धरायबे के पद गाये जाते हैं। आज रोज से जन्माष्टमी की बड़ी बधाई का आरम्भ होता है। व्रज भाद्र कृ. ७ के रोज छड़ी के उत्सव में शयन भोग आये छड़ी पूजा के समय छड़ी के भाव के दो पद गाये जाते हैं।

व्रज श्रा. कृ. २ से भाद्र कृ. २:–तक सांझ को डिडोरा के दर्शन में शृंगार और विविध प्रकार के हिंडोला के भाव के पद सायंनकालीन सभी रागों में चार पद गाये जाते हैं।

उपर्युक्त नित्य और नैमित्तिक कीर्तन प्रकारों के अंतर्गत कम से कम दो-तीन हजार पदों का समावेश होता है। यहां लीलात्मक पदों में से केवल छाक लीला के प्रकारों का उदाहरण दिया जा रहा हैं–

छाक लीला के विविध प्रकार कीर्तनों में पाए जाते हैं। भगवान बालकृष्ण गौचारन के लिए व्रज के विविध स्थलों पर पधारते थे उस समय माता यशोदा भोजन के लिए कभी ग्वालों के साथ और कभी ग्वालिनियों के साथ भोजन सामग्री पठाया करती थीं। ग्वाल लोग कांवर लेकर और ग्वालिनियां सिर पर सामग्री का डला लेकर जाया करती थीं। भगवान कृष्ण कभी दूर निकल जाया करते थे तो टेर देकर भोजन लाई हूं ऐसा संकेत करके बुलाती थीं। यशोदाजी के घर की छाक के उपरांत अन्य व्रजभक्त अन्य गोपीजन अपने-अपने घर से भी छाक ले जाया करते थे। कभी महावन, कभी वृन्दावन, कभी गिरिराज, कभी यमुना तट इत्यादि स्थलों पर छाक ग्वाल-बालों के साथ, कभी मंडलाकार तो कभी हंसते-खेलते हुए भोजन करते हुए इत्यादि लीलाओं के छाक के पद प्राप्त होते हैं। उनमें से २२ प्रकार के भावात्मक पदो की प्रथम पंक्तियां निम्न प्रकार से दी जा रहीं हैं:–

छाकलीला-प्रसंग

छाकलीला प्रकार	उदाहरण : पदों की प्रथम पंक्ति
१. टेरनी के पद	१. हरि कों टेरत फिरत गवारि।
	२. तुम कों टेर टेर मैं हारी।
२. टेरनी जमुना तट की	१. पीत उपरना वारे ढोटा। तोहि कबहुं की टेरत ग्वालिनी।
	२. गोविन्द लीजे छाक तिहारी।

३. टेरनी वृंदावन की	१. छाक लिए सिर, स्याम बुलावत ।
	२. टेरत गुपाल, गुवाल चली ।
४. टेरनी-दुपहर की	१. अकेली बन बन डोल रही ।
५. स्यामढाक की छाक	१. स्यामढाक तर छाक अरोगत ।
	२. स्यामढाक तर मंडल जोर जोर ।
६. बंसीवट की छाक	१. बंसीबट बैठे हैं नंदलाल ।
	२. भोजन करत नंदलाल,संग लिए ग्वालबाल।
७. कदमखंडी की छाक	१. ग्वालमंडलि जोर राजे कदमखंडी मधि ।
	२. लाडिलो छाक खात बनमांह ।
८. वृंदावन की छाक	१. श्रीवृंदावन नवनिकुंज मत्तभ्रमर ।
९. कुमुदबन की छाक	१. कुमुदबन भली पहोंची आई ।
१०. गोवर्धन की छाक	१. बैठे गोवर्धन गिरि गोद ।
	२. गोवर्धन गिरि शृंग सीलन पर ।
११. जमुनातट की छाक	१. जमुनातट भोजन करत गोपाल ।
	२. लाल गोपाल है आनंदकंद ।
१२. उसीरमहल की छाक	१. उसीरमहल में बिराजे मंडल ।
	२. सीतल सदन में जेंवत मोहन ।
१३. जसुमति के घर की छाक	१. जोरत छाक प्रेम सों भैया ।
	२. आई छाक, बुलावे स्याम ।
१४. घरघर की छाक	१. घरघर तों आई छाक ।
	२. अरी छाकहारी चार-पांच आवत ।
१५. दान के भाव की छाक	१. दानघाटी छाक आई गोकुल तें ।
	२. आज दधि मीठो मदनगुपाल ।
१६. सरद के भाव की छाक	१. लाडिले तुम कों छाक ले आई ।
	२. आज बन विपिन में छाकलीला रची ।
१७. गोचारन के भाव की छाक	१. ग्वालिन झांकत है चढि अटा ।
	२. बिहारीलाल आवहु आई छाक ।
१८. पीतवस्त्र की छाक	१. टेरत हैं फेरत पट पियरो ।
	२. बहुत फिरी तुम काज कन्हाई ।

१९. वर्षाऋतु की छाक	१. बादर झूम रहे चहुं ओर । २. आरोगत मोहन मंडल जोरे ।
२०. वर्षा में कुंज के भाव की छाक	१. जेंवन हरि बठे कुंजनमांह । २. आरोगत नागर नवलकिशोर ।
२१. वर्षा-हरियारी की छाक	१. लाल बन भई सकल हरियारी । २. स्याम सुन हरि भूमि सुखकारी ।

नित्य सेवाक्रम में से उष्णकाल एवं चतुर्मास में गाये जाने वाले छाक के पदों में से दो-दो पदों का उदाहरण देख चुके । पश्चात् नैमित्तिक सेवाक्रम में से यहां केवल हिंडोला (झूला) के समय गाये जाने वाले कुछ प्रकारों की ओर दृष्टि करेंगे ।

हिंडोरा के प्रकार भेद

१. नंदालयक हिंडोरा
२. सुरंग हिंडोरा
३. फूलके हिंडोरा
४. फूल-फूलके
५. कुंजके
६. मुकुटके भावके
७. टिपाराके भावके
८. सेहराके भावके
९. फेटा-चंद्रिकाके भावके
१०. काँचके दरपनके
११. हेम के हिंडोरा
१२. जमुना तटके
१३. गोवर्धनके हिंडोरा
१४. कदंबके हिंडोरा
१५. मचकीके हिंडोरा
१६. लहरियाके
१७. चूनरीके
१८. हरेवस्त्र-हरीघटा
१९. पीरे वस्त्र-पीरी घटा
२०. कसूंभी घटा
२१. सफेद घटा (सरद के)
२२. गुलाबी घटा
२३. स्याम वस्त्र-स्याम घटा
२४. सावन तीज-ठकुरानी तीज के
२५. सावनकी पून्यो के
२६. पवित्राके हिंडोरा

ऋतुअनुसार राग

उपर्युक्त ऋतु-ऋतु अनुसारके पदगान के प्रकारोंके पश्चात् उस पदोंको ऋतु-ऋतु अनुसार गाये जानेवाले रागों का क्रम निम्न प्रकार है।

सीतकालमें गाये जानेवाले राग:–

(१) भैरव (२) रामकली (३) ललित (४) मालकोष (५) परज (६) सोहनी (७) खट (८) धनाश्री (९) आसावरी (१०) टोडी (११) पूर्या

(१२) नट (१३) गोरी (१४) नायकी (१५) कान्हरो (१६) कल्याण (१७) विहाग।

इनमेंसे ललित, मालकोष, परज, सोहनी, धनाश्री, आसावरी, टोडी, नायकी यह राग केवल शीतकालमें ही गाये जाते हैं।

उष्णकालमें गाये जानेवाले राग :—

(१) बिभास (२) देवगंधार (३) रामकली (४) बिलावल और बिलावल के प्रकार (५) सारंग (६) सामन्त सारंग (७) नूर सारंग (८) गौर सारंग (९) पूर्वी (१०) सोरठ (११) हमीर (१२) कल्याण (१३) यमन (१४) केदार (१५) कानरो (१६) अडाना (१७) बिहागरा।

इनमें से बिभास, सारंग और सारंग के प्रकार, सोरठ, हमीर, केदार ये राग केवल उष्णकालमें ही गाये जा सकते हैं।

शीतकाल की मर्यादा प्रबोधनीसे वसंत तक और उष्णकालकी मर्यादा द्वितीया पाठ से रथयात्रा तक मानी गई है।

चतुर्मास :—ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमासे रथयात्रा तक वर्षा आगम मानी जाती है। इन दिनोंमें मंगला और सिंगार समय राग और सुधराई के पद गाये जाते हैं। बादमें रथयात्रासे पवित्रा एकादशी तक राग मल्हार और मल्हार के प्रकार गाये जा सकते हैं। हिंडोलाके दर्शन समय मल्हारके अतिरिक्त सांज की सेवामें गाये जानेवाले सभी रागका गान किया जाता है।

वसंतपंचमीसे होली डंडारोपण (माघ शुक्ल १५) तक दिनभर केवल राग बसंत और वसंतके प्रकार गाये जाते हैं।

जन्मदिन और बधाइके दिनोंमें प्रायः सभी राग गाते दृष्टिगत होते हैं।

पुष्टि-सम्प्रदायकी वर्षभरकी उपर्युक्त कीर्तन गान प्रणाली क्रम को देखनेसे पता चलता है कि मंदिरोंमें कीर्तन गान करनेवाले कीर्तनकार जिसको कीर्तनियाजी कहनेका रिवाज है। उनको कमसे कम दो हजार द्रुपद शैलीके पदगानकी बंदिशें कंठस्थ होना आवश्यक था। अष्टछापीय संगीत परंपरा के असे कीर्तनकारोंकी नियुक्ति व्यवस्थित रूपसे होनेका आरंभ द्वारकेशयुग में दिखाई देता है। इसी समयमें श्रीमद्वल्लभवंश के गोस्वामी महाराजश्री के मंदिरोंकी विविध स्थलों पर स्थापना भी हो चुकी थी। जिनमें व्यवसायी अेवम् अव्यवसायी सेवक गण भी थे। तत्पूर्व अनन्य सेवक गण भक्ति-भावना से जो कीर्तनगान करते थे उनमें अधिकतर वाग्गेयकार होनेके कारण पद-गानकी संख्यामें अभिवृद्धि हुई। किन्तु यह परंपरा द्वारकेश युगके पश्चात् स्थगित हो जानेके कारण गायन और वाद्यकलाके व्यवसायी लोग संगीतज्ञ

गोस्वामी महाराजाओके सम्पर्कमें आने लगे। उनमेंसे धार्मिक वृत्तिके भावुक लोग मंदिरोकी राग-भोग शृंगार की सेवा और पदगान को देखकर आकर्षित होने लगे।

इनमेंसे कुछ कलाकारों ने सम्प्रदायकी दीक्षा भी प्राप्त की। इस प्रकार भावुक कलाकारोंको वैष्णव दीक्षा देकर कीर्तन गानकी सेवामें नियुक्त किया गया। परंपरासे सिखे हुअे अैसे भावुक वैष्णव कीर्तनकार जो अव्यवसायी थे उनके संपर्कमें आकर मंदिरोंमेंही कीर्तनगानकी परंपराकी तालीम प्राप्त करने लगे।

इस प्रकार इस युग में व्रजमंडल, राजस्थान, मध्यप्रदेश अेवम् गुजरातमें अष्टछापकी संगीत परंपराका काफी विकास दृष्टिगोचर होता है।

अष्टछापीय-भक्ति संगीत

उद्‌भव और विकास

द्वितीय खण्ड

चम्पकलाल छ. नायक

राग और राग-संख्या

भारतीय संगीत की प्राचीन अष्टछाप (हवेली) संगीत-परंपरा में गाये जाने ले राग और राग संख्या-प्रणाली की मर्यादा के संदर्भ में हम इस प्रकरण में र्चा करना चाहते हैं। परन्तु तत्पूर्व हम प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथों के आधार र राग और उनकी संख्या का संक्षिप्त विचार करेंगे।

भारतीय संगीत के इतिहास में 'बृहद्देशीय' एवं 'भरत नाट्य शास्त्र' प्राचीन- ग्रंथ माने जाते हैं। 'भरत नाट्यशास्त्र' के विवरण में हम देख चुके हैं कि स समय जाति-गान प्रचार में था। राग शब्द का उल्लेख उस समय प्राप्त नहीं ता है।

'बृहद्देशीय' ग्रंथ में मतंग मुनि ने राग शब्द का प्रथम उल्लेख किया किन्तु समय भी जाति-गान प्रचार में था। मतंग ने जिन सात जातियों का उल्लेख या है, उनमें मात्र एक जाति का नाम राग-जाति कहा है। आज हम राग शब्द जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, उस प्रकार के रागों का उद्भव उस समय नहीं था था। सात शुद्ध और ग्यारह विकृत जातियाँ मान कर षड्ज ग्राम व मध्यम म से अठारह जातियों की उत्पत्ति एवं जाति के दशविध लक्षण तथा मूर्छनादि का र्णन किया गया है।

तत्पश्चात् का ग्रंथ नारद-कृत 'संगीतमकरंद' माना जाता है। इस ग्रंथ में राग और प्रत्येक राग की छः भार्या तथा प्रत्येक रागिनी के आठ-आठ पुत्र था आठ-आठ पुत्रवधुओं का उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ का रचना काल वीं शताब्दी तक का माना जाता है। ११ वीं शताब्दी में कवि जयदेव ने 'गीत- विंद' का राग रागिनी में ही गान किया अतः उस समय के पहिले १० वीं ती के समय के लगभग रागरागिनियों की उत्पत्ति का एवं प्रचार का प्रमाणभूत 'संगीतमकरंद' मानना समुचित है।

इस शताब्दी के पश्चात् १३ वीं शताब्दी के "संगीतरत्नाकर" नामक संगीत- त्र के प्रामाणिक ग्रंथ के रागों का उल्लेख करना चाहते हैं।

पं० शार्ङ्गदेव के समय में निम्नप्रकार से २६४ राग-संख्या प्राप्त होती है—

ग्रामरागाः ३०, उपरागाः ८, रागाः २०, पूर्वप्रसिद्धरागांगानि ८, भाषांगानि ११, यांगानि १२, उपांगानि ३, भाषाः ९६, विभाषारागाः २०, अंतर्भाषारागाः ४, र्ङ्गदेवसमयप्रसिद्धरागांगानि १३, भाषाः ९, क्रियांगानि ३, उपांगानि २७, ल २६४।

"सर्वेषामिति रागाणां मिलितानां शतद्वयम् ।
चतु:षष्ट्यधिकं ब्रूते शार्ङ्गी श्रीकरणाग्रणी : ।। *(श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् पृ.–६)*

"राग-विबोध" ग्रंथ में कुल ९९ राग–संख्या दी गई है:–
जनकमेल राग–२३ तथा जय राग संख्या ७६

"स्वरमेलकलांनिधि" ग्रंथ में कुल ६८ राग नाम बताये हैं:––
मेलनाम राग २० तथा जन्य राग नाम ४८।

"चतुर्दंडीप्रकाशिका" ग्रंथ में पं. व्यंकटमखी ने जनकमेल और जन्य रागों की संख्या निम्नप्रकार से स्पष्ट की है:–

शुद्धमध्यमयुक्त मेल–३६, तीव्रमध्यमयुक्त मेल–३६, कुल ७२ ।

प्रत्येक मेल (थाट) से ४८४ जनक रागों की उत्पत्ति बताई गई है तदनुसार राग-संख्या ३४८४८ होती है।* परन्तु उनमें भी लोकप्रसिद्ध मेल १९ सहित लोकप्रिय जन्य राग संख्या ५५ मानी जाती है।०

"रागतरंगिणी" ग्रंथ में पं. लोचन ने कहा है–"पहिले १६००० राग थे। उन रागों का गोपियों ने श्रीकृष्ण के सान्निध्य में गान किया था।" इस प्रकार कृष्णावतार के समय १६००० रागों की संख्या कही गई है।

"एक थाट में से आरोहावरोह की गिनती से ४८४ राग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ७२ थाटों से (४८४ × ७२) ३४८४८ राग उत्पन्न होती हैं। किन्तु इन सभी को राग नहीं कह सकते, क्योंकि राग में रंजकतादिक नियम होना अनिवार्य है।

'राग कुटुंब' यानी प्राचीन पद्धति में राग-रागिनी का वर्गीकरण किया जाता था। प्रत्येक राग-परिवार में राग, रागनियाँ, राग पुत्र तथा पुत्रभार्या राग पाये जाते थे। इनमें विविध मतों के कारण कुछ नामों में भिन्नता दिखाई देती है।

राग-परिवार को प्रसिद्ध करने वाले मुख्य चार मत प्राचीन माने जाते हैं जो कि निम्न प्रकार हैं–

(१) शिवमत† में मुख्य ६ राग तथा प्रत्येक की ६-६ भार्या और आठ-आठ पुत्र माने गये हैं। अत: राग-६, रागनियाँ ३६ तथा प्रत्येक राग के ८ पुत्र राग कुल मिलाकर संख्या ९० होती है।‡

---

* *विशेष जानकारी के लिये देखिए–"भातखंडे क्रमिक पृ. ३*

० *लक्ष्यसंगीत पृष्ठ-१३*

† *शिवमत को कोई सोमेश्वर मत भी कहते हैं।*

‡ *इस मत को शिवजी ने पार्वतीजी के प्रति उपदिष्ट किया था, यह माना जाता है।*

(२) कृष्णमत में भी ६ मुख्य राग, ३६ रागिनियाँ और ४८ पुत्र राग मिलाकर ९० की संख्या होती है किन्तु रागिनियों एवं पुत्र-रागों के नामों में कुछ अन्तर है। मुख्य ६ रागों के नाम शिवमत के अनुसार ही हैं।*

(३) भरत-मत में ६ मुख्य राग प्रत्येक की पांच-पांच भार्या (६+३०) ४८ पुत्र राग और ४८ पुत्र भार्या मिलाकर कुल १३२ की संख्या होती है।

(४) हनुमान्मत में मुख्य ६ राग, प्रत्येक की पाँच-पाँच भार्या, और पाँच-पाँच पुत्र तथा पाँच-पाँच पुत्र भार्या हैं अत: ६ + ३० + ३६ + ३० कुल ९६ की संख्या होती है। मुख्य ६ रागों के नाम भरतमत के समान हैं। भरत मतानुसार ६ मुख्य रागों के नाम इस प्रकार हैं।

> "भैरव: कौशिकश्चैव हिंदोलोदीपकस्तथा।
> श्रीरागो मेघरागश्च षडेते पुरुषाह्वया ।।३।। (सं-दर्पण)

(१) भैरव (२) मालकौंस (३) हिंडोल (४) दीपक (५) श्री (६) मेघ। शिवमतानुसार मुख्य ६ रागों के नाम:--

> श्रीरागोऽथ वसंतश्च भैरव: पंचमस्तथा।
> मेघरागो बृहन्नाट: षडेते पुरुषाह्वया ।।३।। (संगीत दर्पण)

(१) श्री (२) वसंत (३) भैरव (४) पंचम (५) मेघ (६) नटनारायण। शिवमतानुसार रागिनियाँ निम्नप्रकार है‡--

१. **श्रीराग की रागिनियाँ--**

(१) मालवी (२) त्रिवेणी (३) गौड़ी (४) केदारी (५) मधुमाधवी (६) पहाड़ी।

२. **वसंत राग की रागिनियाँ--**

(१) देशी (२) देवगिरि (३) वराटी (४) तोड़िया (५) ललिता (६) हिंडोली।

३. **भैरव राग की रागिनियाँ--**

(१) भैरवी (२) गुर्जरी (३) रेवा (४) गुणकरी (५) बंगाली (६) बहुलो।

४. **पंचम राग की रागनियाँ--**

(१) विभास (२) भूपाली (३) कर्नाटी (४) बडहंसा (५) मालवश्री (६) पदमंजरी।

---

* *संगीत दर्पण २।१४-१९*

‡ *वही २।३८-४३*

५. मेघराग की रागिनियाँ--

(१) मल्लारी (२) सोरठी (३) सावेरी (४) कौशिकी (५) गांधारी (६) हरिश्रृंगार।

६. नट नारायण राग की रागिनियाँ--

(१) कामोदी (२) कल्याणी (३) आभेटी (४) माटिका (५) सालंगनाटी (६) हवीरा।

इनके अतिरिक्त संगीत दर्पण में रागार्णव मत का भी उल्लेख किया गया है। जिनमें मुख्य ६ राग और प्रत्येक की पाँच-पाँच रागिनियों के नाम भी बताये जाते हैं।*

प्राचीन पद्धति के ये सभी राग मूर्छनाओं के आधार पर निर्धारित किये जाते थे। मूर्छना कहने से रागों के अलग स्वर कहने की आवश्यकता नहीं थी।

हनुमन्मत के अनुसार--

पुरुषराग--(१) भैरव (२) कौशिक (३) हिंडोल (४) दीपक (५) श्री (६) मेघ।

१. भैरव की रागिनियाँ--

(१) मध्यमादि (२) भैरवी (३) बंगाली (४) वराटिका (५) सैंधवी।

२. कौशिक की रागिनियाँ--

(१) तोडी (२) संभावती (३) गौडी (४) गुणकी (५) ककुभा।

३. हिंदोल की रागनियाँ--

(१) बेलवली (२) रामक्री (३) देशाख्या (४) पटमंजरी (५) ललिता।

४. दीपक की रागिनियाँ--

(१) केदारी (२) कानडा (३) देशी (४) कौमुदी (५) नाटिका।

५. श्री राग की रागिनियाँ--

(१) वसंती (२) मालती (३) मालश्री (४) धनाश्री (५) आसावरी।

६. मेघ राग की रागिनियाँ--

(१) मल्लारी (२) देशकारी (३) भूपाली (४) गुर्जरी (५) टक्क।

---

* *"संगीत-दर्पण", अध्याय-२ श्लोक ३१ से ३७ तक पश्चात् श्लोक ३८ से रागार्णव मत का उल्लेख होता है। इनके मत-अनुसार पुरुष-राग ६ इस प्रकार हैं--*

भैरव : पंचमो नाटो मल्लारो गौडमालवः।
देशाख्यश्चेति षड्रागा : प्रोच्यन्ते लोकविश्रुता : ३८।।

(१) भैरव (२) पंचम (३) नाट (४) मल्लार (५) गौड़मालव और (६) देशाख्य।

हनुमन्मत और भरत मत के मुख्य ६ पुरुष रागों में कोई भिन्नता नहीं है किन्तु रागिनियों, पुत्र तथा पुत्रभार्याओं के नामों में कहीं कहीं भिन्नता दिखाई देती है। यहाँ पर हनुमन्मत के अनुसार राग-परिवार का कोष्टक निम्नप्रकार दिया जा रहा है—

(१) राग-भैरव-परिवार

रागिनी	**पुत्र**	**पुत्रभार्या**
मधुमाधवी	बडहंस	सोरठी
भैरवी	खट	पूर्वी
बंगाली	बरवा	(दिनकी) पूर्या
बैरारी	विभास	जैजैवंती
सैंधवी	सारंग	ईमन-केदारी

(२) राग-कौशिक (मालकौंस) परिवार

रागिनी	**पुत्र**	**पुत्रभार्या**
तोडी	वागेसर	केदार-नाट
खंभावती	सुघराई	शुद्धनटी
गौड़ी	मांढ	यमुन-कल्याणी
गुनकरी	गारा	भीमपलासी
कुकुभ	अडाना	कामोदी

(३) राग-हिंडाल-परिवार

रागिनी	**पुत्र**	**पुत्रभार्या**
बिलावली	देवगिरी	मालव-गारू
रामकली	बिलहरी	यमन
देशाख्य	सूहा	पूर्या (रातकी)
पटमंजरी	अल्हैया	हमीर
ललित	पंचम	त्रिवेणी

(४) राग-दीपक-परिवार

रागिनी—	**पुत्र**	**पुत्रभार्या**
केदार	जैत	कामोदनाट
कानडा	नायकी	परज
देशी	काफी	लच्छीसाख
कामोद	श्याम	नट-मल्हारी
नट	छायानट	विहाग

(५) राग-श्री परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
वसंत	मारवा	लंकदहन
मारू	शंकरा	सोहिनी
मालश्री	लाचारी	पहाड़ी
धनाश्री	जोगिया	शंकराभरण
आसावरी	गांधारी	गौड-सारंग

(५) राग-मेघ परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
मल्लार	गौड	मुलतानी
देशकार	कल्याण	मांझी
भूपाली	बिद्राबनी	मालीगौरा
गूर्जरी	नटनारायण	खमाज
टंक	सामंत	कान्हड-नाट

(४) "चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण" ग्रंथ में १० राग तथा प्रत्येक की ५–५ भार्या, ४ पुत्र और ४ स्नुषाओं का उल्लेख है। जिनकी संख्या कुल १४० की होती है।

प्राचीन चार मतों के मुख्य छः रागों को अनुकूल छः ऋतुओं में गाने का प्रचार भी था। यह पद्धति लगभग मुसलमानों के समय (मध्यकाल) तक स्वीकृत मानी जाती थी। परन्तु पटना के मुहम्मद साहब ने सबसे पहिले १८१३ ई. में इस प्रकार की पद्धति को अशुद्ध बतलाकर उसकी विस्तृत आलोचना की थी। इसका सारांश है कि रागों से उत्पन्न होने वाली रागिन्यादि में कुछ समानता अवश्य होनी चाहिए। इस मान्यता के आधार पर सब से पहिले बिलावल को अपना शुद्धथाट मानकर नई थाट-पद्धति को जन्म दिया। तत्पश्चात् पं. भातखंडेजी ने भी राग-रागिनी की कुटुंब व्यवस्था पद्धति इत्यादि को गलत बतलाया और जन्य-जनक थाट पद्धति का प्रचार किया और इन्हीं १० थाटों के अंतर्गत प्रचलित सभी रागों को रख दिया।

"राग" की व्यवस्था में रंजकत्व होना अनिवार्य होने से कहा जाता है कि रागों की संख्या मर्यादित होती जा रही हैं। पं. भातखंडेजी ने कहा है कि "२०० रागों से अधिक राग दिखाई देना असंभव सा ही है।" परन्तु क्रमिक ४ भागों की सैकड़ों चीजें ४५ रागों में ही प्राप्त होती हैं। भारतीय संगीत घरानों में विशेषतः इन ४५ रागों का ही अधिक प्रचार और प्रसार था। घरानों के गायक-वादक संख्या की अपेक्षा राग का उठाव, स्वरूप, सुरावट एवं रंजकत्वादि की ओर अधिक

झुकाव रखते थे। फलतः उनकी उन चीजों की बंदिशें अपने घराने का मुख्य अंग बनकर आज तक चालू रही हैं।

"रागतरंगिणी" के श्रीकृष्ण के समय की राग-संख्या के उल्लेख की अति प्राचीन एवं भावात्मक दृष्टि तथा "चतुर्दंडीप्रकाशिका" ग्रंथ की ७२ थाटोत्पन्न रागों की गणित दृष्टि को बाद करने पर प्राचीन तथा मध्यकालीन सभी ग्रंथों में 'संगीत रत्नाकर' में ही सर्वाधिक अर्थात् २६४ की संख्या मिलती है।

अष्टछाप संगीताचार्यों के समय में जन्य-जनक पद्धति का व्यवहार प्रचलित नहीं था। किन्तु राग-कुटुंब व्यवस्था प्रचलित हो चुकी थी। अतः अष्टछाप संगीताचार्यों ने भी राग-रागिनी पद्धति को ही दृष्टि में रखकर रागों को अपनाया यह प्रतीत होता है। यह अनुमान "खटऋतु की वार्ता" के निम्नलिखित उल्लेख से स्पष्ट होता है।

"ता पाछें श्री ठाकुरजी ने छत्तीसों राग-रागिनी को बुलाय के आज्ञा करी जो तुम छै-छै सखी रूप होय के छत्तीसों बाजेन सहित एक-एक ऋतुन की निकुंजन में छै-छै समै-अनुसार श्रीस्वामीजी की आज्ञा तें नृत्य, गान तथा बाजे सावधानीसों बजाइयो। तब छत्तीसों राग-रागिनी श्री ठाकुरजी कों दंडवत करिके छेओं ऋतुनके छेओं निकुंज में छै-छै बाजे सहित छै-छै पधारे। सो तिन छत्तीसों रागरागिनीन के तथा छत्तीसों बाजेन के नाम कहते हैं।" राग-रागिनियों" के नाम निम्न प्रकार दिये हुए हैं:—

१. मल्लार, २. ललित, ३. पंचम, ४ आसावरी, ५. भैरव, ६. मालव, ७. टोडी, ८. कल्याण, ९. गुर्जरी, १०. मालवा,० ११. गोडी, १२. बिलावल, १३. धनाश्री, १४. रंगिली,* १५. खमाज १६. देसाख, १७. कान्हरो, १८. गौड-मल्लार, १९. केदारो, २०. खट (मंजरी), २१. रामकली, २२. †गंधारी, २३. बराडी, २४. कुकुभ, २५. कामोद, २६. नट, २७. गुनकली, २८. θमाधवी २९. देस, ३०. बिभास, ३१. ‡हास, ३२. काफी, ३३. सोरठ, ३४ ईमन, ३५. जैजैवंती, ३६ सारंग,

---

० लेखक की कल्पनानुसार यह राग मालवी अथवा मालव-कौशिक (मालकौंस) होना चाहिए।

* "रंगीली" नाम "नायकी" का संकेतात्मक नाम है, ऐसा इस लेखक का मत है। नंददासजी रचित "सारंग" की रागमाला में "रंग रंगीली सुधर नायकी" कहा गया है, जो विशेषण रूप में "नायकी" का ही उपनाम मानना चाहिए।

† "गंधार" को देव-गंधार तथा θ माधवी को मधमाध सारंग तथा

‡ "हास को" हिंडोलसुहा मानना उचित कहा जायगा। मूल रागों के नाम से अनजान लिखने वाले से हस्तलिखित प्रति में कुछ उलट क्रमसे अपभ्रंश होने की संभावना है। प्राचीन लिखित प्रति प्राप्त होने पर निश्चित हो सकता है। यहाँ हमने प्रकाशित पुस्तक के आधार पर अनुमान किया है।

उपर्युक्त विधान में राग-रागिनियों की संख्या ३६ प्राप्त होती है, किन्तु मुख्य छः राग और ३० रागिनियों का कोई उल्लेख नहीं है। यदि इनमें ६ रागों की संख्या और इनके नाम समझने का हम प्रयत्न करें तो अनुमानतः १ मल्लार, २, पंचम ३, मालवकौशिक, ४ भैरव, ५ हिंडोल तथा ६ नट इन रागों की संभावना कर सकते हैं।

अष्टछाप के महानुभाव श्री सूरदासजी-रचित "सब दिन तुम ब्रज में रहो, हरि होरी है" (यह होरी-धमार जो "गोरी" राग में प्रसिद्ध है) की ९ वीं तुक में 'छाट छै राग छै रागिनी, ताल तान बंधान" कहा गया है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि श्रीसूरदासजी के मतानुसार छः राग और प्रत्येक राग की छः रागिनी के उल्लेख से राग-रागिनी की संख्या कुल ४२ की मानी जायगी। इस मान्यता के अनुसार उन्होंने "सूरसारवली" में निम्नप्रकार वर्णन किया है।

"ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने ।
जान प्रभात राग पंचम खट मालकोष रस भीने ।।

सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि, सारंग सुर नट जान ।
सुर सावंत भूपाली ईमन, करत कान्हरो गान ।।

ऊंछ अड़ाने के सुर सुनियत, निपट नायकी लीन ।
करत बिहार मधुर केदारो, सकल सुरत सुख दीन ।।

गौर–मल्हार सोहागनि भैरव, ललित बजायो ।
मधुरबिभास सुनत बेलावल, दंपति अति सुख पायो ।।

देशाख देव पुनि गौरी श्री सुखरास ।
जेतश्री अरु पूर्वी टोडी, आसावरी गुन रास ।।

रामकली गुनकली केतकी, सुर सुघराई गाये ।
जैजैवंती जगतमोहिनी, सुरसों बीन बजाये ।।

सुआ सरस मिलत प्रीतम सुख, सिन्धुवरिरस मान्यो ।
जान प्रभात प्रभाती गायो, भोर भयो दोउ जान्यो ।।*

(१) ललित, (२) पंचम, (३) खट, (४) मालकौंस, (५) हिंडोल, (६), मेघ, (७) मालव, (८) सारंग, (९) नट, (१०) सावंत, (११) भूपाली, (१२) ईमन, (१३) कान्हरो, (१४) अडानो, (१५) नायकी, (१६) बिहागरो, (१७) केदारो (१८) सोरठ, (१९) गोड, (२०) मल्हार, (२१) सोहनी, (२२) भैरव, (२३)

---

* "केतकी" राग का संकेत प्राप्त नहीं हुआ है।

बिभास, (२४) बिलावल, (२५) देवगिरि, (२६) देसाख, (२७) देवगंधार, (२८) गौरी, (२९) श्री (३०) जेतश्री, (३१) पूर्वी, (३२) टोडी, (३३) आसावरी, (३४) रामकली, (३५) गुनकली, (३६) केतकी, (३७) सुघराई, (३८) जैजैवंती (३९) *जगतमोहिनी, (४०) सुहा, (४१) सिंधुरा, (४२) प्रभाती।

प्रिया प्रीतम को प्रसन्न करने के लिए संगीत-प्रवीणा ललिता सखी ने वीणा (बीन) तथा गान द्वारा उत्तर रात्रि के ललित राग से आरंभ करके प्रातःकाल के पश्चात् मध्यान्ह एवं सांझ और रात्रि के समय में गाये जाने वाले राग-रागिनियों को मिलाकर ४२ की संख्या पूरी की।

उपर्युक्त ४२ राग-रागिनियों में से मुख्य छः राग सूर की दृष्टि से निम्न प्रकार प्राप्त होंगे।

(१) श्री, (२) वसंत, (३) भैरव, (४) पंचम, (५) मेघ, (६) नट

“सूर-सारावली” के आधार पर ४२ तथा “षड्ऋतु” भावना के आधार पर ३६ राग-रागिनियों की संख्या स्पष्ट होती है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय तक की कीर्तन प्रणाली में छः राग और तीस रागिनियों को मिलाकर कुल ३६ रागों का ही गान श्रीजी के संमुख किया जाता था।

१. श्रीकुंभनदासजी के गाये हुए ४२ रागों के नामोल्लेख प्राचीन कीर्तन संग्रहों में प्राप्त होते हैं।
२. श्रीसूरदासजी के गाए हुए ४२ रागों के नाम प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। किन्तु श्रीमदाचार्य की उपस्थिति के समय में ३६ रागों का ही गान किया होगा।
३. श्रीपरमानंदजी ने भी ४२ रागों का गान किया। किन्तु श्रीमदाचार्यचरण के समय तक ३६ रागों का ही गान किया।
४. श्रीकृष्णदास जी के पद ४२ की राग-संख्या में पाये जाते हैं।
५. श्रीगोविंदस्वामी के पद ३६ की राग-संख्या में हैं।
६. श्रीछीतस्वामी जी के पद ३६ की राग-संख्या में उपलब्ध हैं।

** “जगतमोहनी” राग का उल्लेख “संगीत सागर” (हाथरसप्रकाशन) पृष्ठ ७२ एवं १२० में है। तदुपरांत*

“संगीत शास्त्र” पृष्ठ ३०८ पर “मायामालव” मेला जन्य तथा जिसके स्वर सा ग म प नि सा/सा नि प म ग रे सा बताये हैं।

७. श्रीचतुर्भुजदास जी के पद ३६ की राग संख्या में मिलते हैं। और

८. श्रीनन्ददास जी के पदों में भी ३६ रागों के नामोलेख पाये जाते हैं।

उपर्युक्त संख्या के रागों के नामों का अष्टछाप संगीतचार्यों के संक्षिप्त जीवन परिचय के प्रकरण में भी उल्लेख किया गया है।

हम पहिले कह चुके हैं कि श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के समय में जनक मेल और जन्य रागोत्पत्ति का प्रकार प्रचार में नहीं था। किन्तु राग-परिवार-व्यवस्था प्रचार में होने से श्री सूरदासजी, श्री परमानंददास जी तथा श्री कृष्णदासजी ने ६ राग और ३६ रागिनियों के शास्त्रोल्लेख के अनुसार ४२ की राग संख्या का तथा श्री कुंभनदासजी, श्री गोविंदस्वामी, श्री छीतस्वामी, श्री चतुर्भुजदास जी तथा श्री नंददासजी ने ६ राग और ३० रागिनियों का सिद्धांत अपनाया यह दृष्टिगत होता है। संभवतः इन पांच सखाओं षट्ऋतु की भावना को भी लक्ष्य में रख कर ३६ संख्या को उचित समझा होगा।

हस्तलिखित पद संग्रहों में से कीर्तनों का समुच्चय करके नित्य की, वसंतधमार की और वर्षोत्सव की बृहद् पुस्तक श्री ठाकुरदास ने सर्व प्रथम प्रकाशित की तत्पश्चात् उनके अनुकरण भी हुए। इन प्रकाशनों में भी ३६ से अधिक रागों के नाम प्राप्त होते नहीं हैं। श्री ठाकुरदास सूरदास तथा श्री लल्लूभाई देसाई के प्रकाशित कीर्तनों के पूर्व प्रकाशित बृहद् ग्रंथों में भी प्रायः निम्न ३६ रागों के नाम ही दिखाई देते हैं:—

१. भैरव, २. रामकली, ३. खट, ४. विभास, ५. देवगंधार, ६. ललित, ७. मालकौस ८. बिलावल, ९. पंचम, १०. सूहा, ११. सुघराई, १२. धनाश्री, १३. आसावरी, १४. टोडी, १५. सारंग, १६. नट, १७. गौरी, १८. श्री, १९. पूर्वी, २०. मारू, २१. कल्याण, २२. हमीर, २३. सौरठ, २४. काफी, २५. जैजैवंती, २६. केदार, २७. ईमन, २८. मालव, २९, कानरा, ३०. नायकी, ३१. अडाना, ३२. बिहाग, ३३. वसंत, ३४, मल्हार, ३५. रायसा, ३६. बिहागरा।

यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि अष्टछाप जैसे संगीताचार्यों के पद-गान के संग्रहों में ३६ या ४२ रागों के ही नामोल्लेख क्यों प्राप्त होते हैं? अधिक क्यों नहीं?

इस प्रश्न को विचारने के पहिले ही हमने कहा है कि उस समय संगीत क्षेत्र में राग-कुटुंब व्यवस्था प्रचलित थी। ग्रंथों में दो मत थे। एक मत में ४२ की संख्या और दूसरे मत में ३६ (राग ६-रागिनियाँ ३०) की संख्या मानने का प्रचार था। अतः उस समय के राग-रागिनियों की संख्यानुसार इतने ही रागों को प्रभुसंमुख विनियोग कराया। यह प्रमाण (शास्त्राधार) और प्रमेय (भावनानुसार) की दृष्टि से संबंधित है।

दूसरा कारण यह भी है कि करीब संवत् १५५६ (ई. सं. १५००) में गोवर्धन की गिरिराज की पहाड़ी पर छोटा सा कच्चा मंदिर बनवाकर श्रीकुंभनदासजी को सेवक बनाकर कीर्तन-गान की सेवा में नियत किया गया तथा सदूपांडे और रामदास चौहान को सेवा-पूजा का कार्य करने की आज्ञा की गई। परन्तु उस समय राग, भोग और श्रृंगार की सेवा का कोई नित्यक्रम निर्धारित नहीं था व्रजवासी लोग अपनी इच्छानुसार सेवा-पूजा गानादि किया करते थे। तत्पश्चात् संवत् १५५९ की वैशाख शु. ३ को इस मंदिर का नव निर्माण आरंभ हुआ। संवत् १५६४ में मंदिर का अधिकांश भाग बनने पर श्रीनाथजी को विराजमान किया गया। तब बंगाली वैष्णवों को सेवा-पूजा के लिए बुलवाया गया। सेवा-प्रकार भी सूक्ष्म रूप में था। श्रृंगार में प्रायः मोर चंद्रिका, पाग और गुंजा की माला का श्रृंगार किया जाता था। और व्रजवासियों द्वारा प्राप्त साधारण सामग्री का भोग लगाया जाता था। श्री कुंभनदासजी कीर्तन की सेवा करते थे और श्रीकृष्णदासजी उस समय भेंटिया (भेंट लाने) का कार्य करते थे।

पूरणमल्ल क्षत्रिय के द्रव्य से अधूरा मंदिर संवत् १५७६ में (१७ वर्ष बाद) वैशाख शु. ३ को सम्पूर्ण सुविधानुसार पूरा बन गया। इस समय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी की उपस्थिति में एक समारोह हुआ। यद्यपि श्रीसूरदासजी संवत् १५६७ में श्रीमदाचार्य जी की शरण आये उसी समय से वे श्रीनाथजी को कीर्तन सुनाया करते थे किन्तु इस समय (संवत् १५७६) से श्रीकुंभनदासजी के साथ श्रीसूरदासजी भी नियत क्रम से कीर्तन की सेवा करने लगे। दोनों महानुभाव मिलकर श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा सम्हालते थे। तदतिरिक्त श्रीकृष्णदास जी, जो संवत् १५६८ में शरण आये; प्रारंभ में भेंटिया का कार्य करते थे और बाद में मंदिर के अधिकारी बने थे। अधिकारी के कामों की जवाबदारी के कारण वे अवकाश के समय श्रीकुंभनदासजी तथा श्रीसूरदासजी के कीर्तन-गान को सुना करते थे। एकाग्रता, तन्मयता, संगीत के प्रति अभिरुचि, भगवद्भाव एवं मधुर कंठ तथा तीव्र ग्रहणशक्ति के कारण एक दशक के समय में ही वे श्रीनाथजी की कृपा से संगीत और कवित्व शक्ति प्राप्त कर चुके थे।

सं. १५७७ में कीर्तनकार श्रीपरमानंददासजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी की शरण आये और श्रीनाथजी की कीर्तन-संगीत की सेवा में नियुक्त किये गये। कृष्णदासजी को अब तीनों संगीताचार्यों के सत्संग का लाभ प्राप्त होता रहा। फलतः श्रीमहाप्रभुजी के समय तक कृष्णदास संगीत शास्त्र के ज्ञाता सुकवि और उत्तम गायक भी हो चुके थे, और अवकाश मिलने पर भक्तिपूर्वक लीलात्मक पदों का श्रीजी के सम्मुख गान भी किया करते थे।

अष्टछाप के आठ महानुभावों में श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के उपर्युक्त चार सेवकों के पश्चात् श्रीगुसाँईजी के चार सेवकों में श्रीगोविंद स्वामी और छीतस्वामी वि.

सं. १५९२ में तथा श्रीचतुर्भुजदास सं. १५९८ में एवं नंददासजी सं. १६०७ में श्री गुसाँईजी के सेवक हुए।

पहिले हम बता चुके हैं कि श्रीसूरदासजी, श्रीपरमानंददासजी तथा श्रीकृष्णदासजी के पद संग्रहों में प्रायः ४२ राग और तदतिरिक्त पांच सखाओं के पद संग्रहों में ३६ रागों से अधिक संख्या का उल्लेख हमें प्राप्त हुआ नहीं है। इसमें कोई आश्चर्य न होगा क्योंकि भारतीय संगीत के इतिहास के प्रसिद्ध घरानों में भी अधिकतर ४५ राग ही विशेष प्रचार में थे। इसके समर्थन में इतिहासज्ञ पं. भातखंडेजी का निम्न उद्धृत विधान देखिए। "गेल्या शंभर वर्षांतर संगीताचा इतिहास आपण पाहूं लागतो तर एक गोष्ट आपल्या दृष्टिस पेडल कीं, त्या कालांत प्रसिद्धीस आलेल्या उत्तमोत्तम गायकां चे तैयारी चे नेहमीच्या गाण्या चे राग म्हटले या चार क्रमिक पुस्तकांत ४५ राग सांगितले आहेत तेच असत। खुद ग्वाल्हेर चे प्रसिद्ध ख्याल गायक नथूखां, हस्सूखां, हद्दूखां वगैरे झाले त्याचे नेहमीच्या गायकी चे राग तर या चार पुस्तांकत येणारेंच बहुतेक असत।

(क्रमिक पु० ४ मराठी पृष्ठ ३)

उपर्युक्त विधान पं. भातखंडेजी ने करीब ५० वर्ष पहिले किया है। अतः ई. सं. १८०० के प्रारंभ समय के पश्चात् यानी आज से १५० वर्ष के इतिहास की दृष्टि से भारतीय घरानों की ४५ रागों की संख्या उनकी चार पुस्तकों में निम्नप्रकार प्राप्त होती है—

(१) यमन (यमनकल्याण) (२) बिलावल (अल्हैयाबिलावल), (३) खमाज, (४) भैरव, (५) पूर्वी, (६) मारवा, (७) काफी, (८) आसावरी, (९) भैरवी, (१०) तोड़ी, (११) भूपाली, (१२) हमीर, (१३) केदार, (१४) बिहाग, (१५) देस, (१६) तिलकामोद (१७) कालिंगडा, (१८) श्री, (१९) सोहनी, (२०) बागेश्री (२१) बिन्द्राबनी-सारंग, (२२) भीमपलास, (२३) पीलू, (२४) जौनपुरी, (२५) मालकोंस, (२६) शुद्धकल्याण, (२७) कामोद, (२८) छायानट (२९) गौड-सारंग, (३०) हिंडोल, (३१) शंकरा, (३२) देशकार, (३३) जैजैवंती, (३४) रामकली, (३५) पूर्याधनाश्री, (३६) वसंत, (३७) परज, (३८) पूर्या, (३९) ललित, (४०) गौड-मल्लार, (४१) मियां-मल्लार, (४२) बहार, (४३) दरबारी-कानडा, (४४) अडाना और (४५) मुलतानी।

जिस प्रकार उस समय के उत्तमोत्तम गायकों की तैयारी के रियाज़ के, और हमेशा की गायकी के मुख्य ४५ ही राग प्रचार में थे। उसी प्रकार अष्टछाप घराने की कीर्तन प्रणाली में भी ३६ या ४२ राग-संख्या प्रचार में है।

उपर्युक्त इन ४५ रागों के अतिरिक्त कुछ अप्रचलित एवं अप्रसिद्ध राग भी थे, ये खोज के पश्चात् पं. भातखंडेजी को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार के रागों को

उन्होंने क्रमिक पाँचवें और छठे भाग में प्रकाशित किया है। इनकी संख्या सब मिलाकर २०० के लगभग है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय में श्री कुंभनदासजी तथा श्रीकृष्णदास (अधिकारी) अपने अवकाश और सुविधा के अनुसार, किन्तु श्रीसूरदासजी तथा श्रीपरमानंददासजी नियमित रूप से समय एवं ऋतु के अनुसार श्रीजी के संमुख कीर्तन पद-गान किया करते थे। पश्चात् श्रीविट्ठलनाथजी ने अपने काव्य-संगीत कलाविद् चार शिष्यों–गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास को सम्मिलित कर अष्टसखा के नाम से एक मंडली बनाई, जो "अष्टछाप" के नाम से आज तक प्रसिद्ध है।

अष्टछाप की स्थापना का समय संवत् १६०२ (ई. सं. १५४६) में माना गया है* किन्तु उस समय श्रीनंददासजी के स्थान पर विष्णुदास छीपा को सम्मिलित किया गया था यह माना जाता है। क्योंकि श्रीनन्ददासजी सं. १६०७ (ई. सं. १५५१) में श्रीविट्ठलनाथजी की शरण आये थे। उसी समय काव्य-संगीतादि में विशेष योग्यता के कारण "नंददास" को अष्टछाप में स्थान दिया और विष्णुदास छीपा को वृद्धत्व के कारण श्रीगुसांईजी ने द्वार-रक्षक के स्थान पर नियत किया, ऐसी मान्यता है। मुझे लगता है कि श्रीविट्ठलनाथजी ने संभवतः सं. १६०८ के आसपास अष्टछाप की स्थापना की होगी।

संवत् १६०७ में श्रीविट्ठलनाथजी को विधिपूर्वक आचार्यत्व प्राप्त हुआ। पश्चात् एकाध वर्ष में श्रीजी की सेवाक्रम में राग, भोग, और शृंगार का क्रम क्रमशः बढ़ता रहा। आठ मुख्य कीर्तनकारों के सहायक रूप में आठ उपकीर्तनकार भी रखे गये। श्रीगुसांईजी स्वयं संगीतशास्त्र के ज्ञाता ही नहीं, अच्छे वीणावादक भी थे। राग-रागिनियों में प्रवीण होने के कारण अष्टछाप के कई महानुभावों की कलाओं के आस्वादन के लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी तरसते थे।

श्रीविट्ठलनाथजी के समय तक में राग, भोग और शृंगार की सेवा-विधि का क्रम बढ़ता रहा। पश्चात् आपके सात पुत्रों के समय में भी इसमें क्रमशः वृद्धि होती रही। नित्य नैमित्तिक उत्सव-त्यौहारों में अन्नकूट तथा छप्पनभोग के उत्सव भी मनाये जाने लगे, जिनमें छप्पन प्रकार की विविध सामग्री के भोग अर्पित किये गाते थे। उसी प्रकार वर्ष भर के मुख्य उत्सव भी ५६ की संख्या में मनाये जाते थे; जिनका उल्लेख अन्यत्र किया जायगा। राग-संख्याओं की दृष्टि से भेद होने पर भी, अष्टछाप कीर्तनकारों में से तीन सखाओं ने ४२ और अन्यों ने ३६ की संख्या में राग-गान किया है। बाद में रागों के अन्य प्रकारों का विनियोग होने पर रागों की संख्या भी ५६ हो गयी जो कि निम्न प्रकार से प्राप्त होती है :–

---

* *"प्राचीन वार्ता रहस्य" द्वितीय भाग में अष्टछाप के चित्र के साथ उसका समय १६०२ छपा हुआ है।*

(१) भैरव, (२) रामकली, (३) रामग्री, (४) ललित, (५) मालकोंस, (६) खट, (७) बिभास, (८) हिंडोल, (९) वसंत, (१०) पंचम, (११) देवगंधार, (१२) बिलावल, (१३) सुहा, (१४) सुघराई, (१५) गुर्जरी, (१६) टोडी, (१७) आसावरी, (१८) धनाश्री, (१९) सारंग, (२०) सोरठ, (२१) मेघमल्लार, (२२) मल्लार, (२३) खरज, (२४) अल्हैया-बिलावल, (२५) नट-बिलावल, (२६) गौडमल्हार, (२७) सोरठमल्लार, (२८) सामंत-सारंग, (२९) गौडसारंग, (३०) नट, (३१) नटनारायण, (३२) मालव-गौरा, (३३) पूर्वी, (३४) चेती-गौरी, (३५) सामेरी, (३६) श्री, (३७) जैतश्री, (३८) मालश्री, (३९) मारू (४०) मालव, (४१) खमाज, (४२) काफी, (४३) हमीर, (४४) हमीरकल्याण, (४५) ईमन, (४६) कल्याण, (४७) ईमनकल्याण, (४८) स्यामकल्याण, (४९) केदारो, (५०) जैजैवंती, (५१) कान्हरो, (५२) नायकी, (५३) रायसो, (५४) अड़ानो, (५५) बिहागरो, (५६) बिहाग।

सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली में प्रारंभ से ही राग (संगीत), भोग (सामग्री) और श्रृंगार को प्रमुख स्थान दिया गया है। श्रीविट्ठलनाथजी भलीभाँति जानते थे कि पुष्टिमार्गीय सेवा और भावना का क्रियात्मक रूप से विस्तृत प्रचार करने में इन तीनों प्रकारों का विस्तार करने की योजना बनाना आवश्यक है। फलतः "भोग" के प्रकार में "छप्पनभोग" (छप्पन प्रकार की सामग्री) का, "राग" यानी कीर्तन-सेवा में ५६ प्रकार के रागों का और श्रृंगार यानी शोभन कला में ५६ के त्यौहारोत्सवों का क्रमशः आयोजन किया। संभव है अष्टछाप की स्थापना के पहिले ४२ रागों का और तत्पश्चात् श्रीविट्ठलनाथजी के समय तक श्रीजी की कीर्तन-सेवा में ५६ की संख्या में राग-रागिनियों का अंगीकार हुआ होगा।

अष्टछाप के अतिरिक्त श्रीमद्वल्लभाचार्य के ८४ सेवकों तथा श्रीविट्ठलनाथजी के २५२ वैष्णवों में जो संगीतज्ञ कवि थे, जिन्होंने अष्टछाप परंपरा की भावनानुसार प्रभु-संमुख कीर्तनगान किया था, उनके पदों को तथा तदुपरान्त भगवद्-सानुभावैक सम्प्रदायेतर संगीतज्ञ भक्त कवियों के पदों को भी श्रीविट्ठलनाथजी ने कीर्तन-प्रणाली में स्थान देना आरंभ किया था; जिनकी नामावली "जीवन-परिचय" प्रकरण में प्रकाशित की गई है। इस प्रकार क्रमशः ३६, ४२ और ५६ की राग-संख्या का विचार करने के पश्चात् श्रीगोकुलनाथजी के तथा श्रीहरिरायजी के समय के लगभग साम्प्रदायिक तथा सम्प्रदायेतर भक्त कविवरों के पदों की विपुल प्रमाण में रचनाएँ सम्प्रदाय के लिखित संग्रहों में प्राप्त होती हैं। इन पदों का उस समय से प्रभु-संमुख गान किया जाता है। इन पदों का अधिकांश प्रकाशन भी हो चुका है। परन्तु श्रीहरिरायजी के समय तक यानी ईसा की १८ वीं शताब्दी तक ५६

---

१. *यह ५६ प्रकार के रागों की नामावली लिखित एवं प्रकाशित कीर्तन संग्रहों में दिये हुए शीर्षक के आधार पर ही प्रस्तुत की गई है।*

से अधिक संख्या में राग संख्या का विस्तार हुआ इस संबंध में हमारा मत है कि अष्टछाप-संगीत-परंपरा की मर्यादा में ईसा की १८ वीं शताब्दी तक के महानु-भाव भक्त-संगीतज्ञ कविवरों के रचे हुए और गाये हुए पदों का समावेश दृष्टि-गोचर होता है, जो प्रकाशित-अप्रकाशित कीर्तन-संग्रहों में विद्यमान है। इन संग्रहों में से जिन-जिन रागों के नाम प्राप्त हैं उन्हें एकत्र करने के उपरान्त कई पदों की बन्दिशों को सुनने पर रागों के कुछ अन्य प्रकार भी पाये जाते हैं। किन्तु इनकी संख्या भी ८४ से अधिक नहीं है। अतः अष्टछाप (हवेली) संगीत परंपरा में ८४ राग-संख्या ही मान्य है, यह स्वीकार करना समुचित है।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि रागों की कुल संख्या ८४ ही क्यों, न्यूनाधिक क्यों नहीं ? इस प्रश्न का समाधान शास्त्रीय एवं भावात्मक दृष्टि से इस प्रकार हो सकता है। पं. लोचन रचित १५ वीं शती के "राग-तरंगिणी" ग्रंथ में उल्लेख मिलता है कि "पहिले प्राचीन समय में मूल १६००० रागों की संख्या थी। इन सभी रागों का श्रीकृष्ण के सन्निधान में सोलहसहस्र गोपियों ने गायन किया था। इस विधान को "रागकल्पद्रुम" ग्रंथ का भी समर्थन प्राप्त होता है।[*]

षोडशसहस्र भिन्न-भिन्न रागरागिनी ईरितः ।
वृन्दावने रासक्रीडायां एकैक श्रीकृष्णसन्निधौ ।।

(राग-कल्पद्रुम, रागाध्याय, पृष्ठ–१३)

वृन्दावन में रासक्रीडा के समय श्रीकृष्ण के सम्मुख १६००० गोपिकाओं में से प्रत्येक ने भिन्न-भिन्न राग गाकर "सोलहसहस्र" राग-रागिनियाँ प्रस्तुत की थीं। "संगीतकलाधर" ग्रंथ में भी १६००० की संख्या का उल्लेख किया गया है।[‡]

अष्टछाप के संगीताचार्य श्रीनंददासजी ने भी भावात्मक दृष्टि से "रासपंचा-ध्यायी में यही वर्णन किया है:—

जितकहूंतीं ब्रजवधू, कोटियन कोटि भरि रति ।
तितेई तहां रागिनी-राग, संगीत भेद गति ।।९।।

सम्प्रदाय में सारस्वत कल्प की श्रीकृष्ण-लीला की भावनानुसार पुष्टि-मार्गीय सेवा-प्रणाली की रचना की गयी है, यह माना जाता है। सम्प्रदाय की सेवा-भावना में उस समय की लीला का स्पष्ट प्रतिबिंब देने का प्रयत्न है। तद-नुसार राग-संख्या के विषय में भी सारस्वत कल्प की रासक्रीड़ा के समय की राग-गान संबंधी अनुकरण भावना मानी गई है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के ८४ सेवकों को भी पूर्वजन्म की भावना में सखीरूप माना जाता है। उस कल्प की श्रीकृष्णलीला में रासक्रीड़ा के समय प्रत्येक गोपिका

---

[*] उ. हि. सं की ऐतिहासिक समालोचना (गुजराती प्रति) पृष्ठ १७

[‡] संगीतकलाधर पृ. १२८

ने एक-एक राग का गान किया था उसी आधार पर "पुष्टिमार्ग" की 'राग' प्रणाली में पुष्टिमार्ग के संस्थापक श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के ८४ सेवकों में प्रत्येक की ओर से एक-एक राग को अंगीकार कराने के हेतु से पुष्टिसंगीत प्रणाली में प्रभुको कुल ८४ रागों का ही विनियोग माना गया है।

यही नहीं संप्रदाय में निम्न तथ्यों में भी ८४ की संख्या को ही महत्व दिया है:—

(१) श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने ८४ स्थानों पर ही श्रीमद्भागवत का पारायण किया, इन स्थलों को श्रीमहाप्रभुजी की बैठक कहा जाता है। बैठकों की ८४ संख्या सुप्रसिद्ध है।

(२) पुष्टि-सम्प्रदाय के दीक्षा मंत्र (ब्रह्मसंबंधमंत्र) के अक्षर ८४ ही हैं।

(३) श्रीवल्लभाचार्यजी के ग्रंथों की रचना भी ८४ है।

(४) श्रीकृष्णक्रीड़ा-स्थान व्रज-प्रदेश की मर्यादा भी ८४ कोस की है; जहाँ प्रति वर्ष व्रजयात्रा निकलती है।

इस प्रकार ८४ की संख्या की मर्यादा के संदर्भ में ८४ लक्ष योनियों में भटकते हुए जीवों को बंधन-मुक्त करने का हेतु भी दीख पड़ता है। मैं समझता हूँ कि इसी उद्देश्य से सम्प्रदाय की राग-संख्या भी ८४ मानी गई है। इन ८४ रागों में पुष्टिमार्गीय भगवद्-गुणगान (कीर्तन) से जीव ८४ लक्ष योनियों से मुक्त होकर कृतार्थ होता है, यही नहीं भगवत्-साक्षात्कार तक ले जाने की शक्ति भगवद्गुणगान में है, जो भारतवर्ष के भक्तों तथा संतमहंतादि महानुभावों के जीवन-चरित्रों में हम देख सकते हैं।

८४ राग-संख्या के समर्थन में उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त श्रीगुसांईजी, श्रीगोकुलनाथजी तथा अष्टसखादि कीर्तनकारों ने सम्प्रदाय के उत्तमादि सिद्धांत को भी लक्ष्य में रखा है। सम्प्रदाय की सेवा का मुख्य सिद्धांत है कि "प्रभु उत्तम वस्तु के भोक्ता हैं।" यह सिद्धांत राग (संगीत), भोग (सामग्री) एवं शृंगार, इन तीनों प्रकार की सेवा-प्रणाली में अपनाया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भोग-सामग्री अर्थात् खाद्य पदार्थों के सात्विक, राजस और तामस गुणों का वर्णन किया गया है जिनमें भोजन के सात्विक पदार्थों को आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख एवं प्रीति में वृद्धि युक्त, रसयुक्त, स्निग्ध, स्थिर और हृदय के लिए आनंद युक्त बताया है। राजस भोजन के पदार्थों में कटु, लवण, अम्ल, उष्ण, तिक्त, रुक्ष एवं दाह करने वाले आहारों का उल्लेख किया गया है, और यातयाम, रसहीन, दुर्गंधयुक्त, बासी (पर्युषित) उच्छिष्ट एवं अपवित्र भोजन को तामस-प्रिय कहा है।*

---

* *श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय-१७ श्लोक--८, ९, १०)*

श्रीमद्भगवद्गीता के उपर्युक्त सिद्धांतानुसार पुष्टि सम्प्रदाय में "भोग" (सामग्री) में सात्विक पदार्थों का ही नित्य-क्रम में उपयोग किया जाता है। ऋतु, उत्सव, त्यौहार आदि नैमितिक क्रम में कभी किसी राजस पदार्थ का समावेश तो किया जाता है परन्तु तामस पदार्थों का सर्वथा वर्जन किया जाता है।

प्राय: ९० प्रतिशत सात्विक अर्थात् उत्तम पदार्थों की सामग्री का भोग लगाया जाता है। १० प्रतिशत नैमित्तिक क्रम में राजस यानी मध्यम प्रकार के पदार्थों का उपयोग किया जाता है, किन्तु तामस अर्थात् अधम पदार्थों का भोग में कोई स्थान नहीं है। प्याज, लहसुन, मोगरी, मूली, तरबूज, गाजर, फलावर, कोबीज, कालकूल इत्यादि राजस-तामस आहार में गाजर, मूली, तरबूज, मोगरी, राजस (मध्यम) पदार्थ होते हुए भी त्याज हैं, परन्तु प्याज, लहसुन, आदि तामस-अधम वस्तु सर्वथा निषिद्ध हैं। सम्प्रदाय की प्रणाली में "भोग" और "राग" का परस्पर गहरा संबंध है। इस विषय की चर्चा अन्य स्थल पर की जायगी। श्रीजी को उत्तम यानी सात्विक वस्तुओं का ही भोग लगाया जाता है और कतिपय राजस-मध्यम-सामग्री का उपयोग भी किया जाता है, किन्तु अधम का सर्वथा निषेध है।

इस प्रकार राग (संगीत) की सेवा-प्रणाली में भी उत्तम, मध्यम एवं अधम का विचार किया गया है। यह केवल साम्प्रदायिक भावना की दृष्टि ही नहीं है, किन्तु संगीत के शास्त्रग्रंथों में भी इस विचार का समर्थन किया गया है। उदाहरणार्थ 'स्वरमेल कलानिधि' ग्रंथ के 'राग-प्रकरण' के आरंभ में कहा है–

"एतेषु वा मता रागा उत्तमा मध्यमा अपि।
अधमाश्चापि सकला: कथ्यन्ते ते विवेकत: ।।"

तत्पश्चात् उत्तम वर्ग में २० रागों का नामोल्लेख किया है,

× × × **इतिरागा: कथिताश्चोत्तमोत्तमा:।**
असंकीर्णतया लोके रागा विंशतिरेव च ।।
गीतप्रबन्धकालापयोग्या एते भवन्ति हि ।।

भावार्थ–ये बीस राग उत्तम वर्ग में हैं। ये असंकीर्ण होने से गीत, प्रबन्ध, आलापादि गायन के योग्य मानी गयी है।

× × × **पञ्चदशश्चैव।**
लोके बहुव्यवहारा: कीर्तिता मध्यमा बुधै: ।।

भावार्थ–इन १५ रागों को पंडितों ने "मध्यम" वर्ग में माना है। (ये राग प्रबन्धादि आलापों के योग्य माने जाते हैं किन्तु व्यवहार में लोगों में बहुप्रचलित न होने से मध्यम वर्ग के माने गये हैं।

"अधम" रागों की संख्या का भी वर्णन किया गया है—

आर्द्रदेशीत्याद्यश्च रागाः स्युरधमाः क्रमात् ।
सर्वेष्वेतत्पुरोक्तेषु मध्यमेषूत्तमेषु च ।।
अन्तर्भूताश्च संकीर्णाः पामरभ्रामकाश्च ते ।
रागास्तावत् प्रबंधानामयोग्या बहुलाश्च ते ।।
तस्मान्नेते परिग्राह्या रागाः संकीतकोविदैः ।।

भावार्थः—आर्द्रदेशी इत्यादि सभी तैंतीस राग "अधम" माने गये हैं। उपर्युक्त बताये गये रागों में "उत्तम" "मध्यम" और "अधम" सभी रागों का वर्णन किया गया है। जिनमें साधारण लोगों को भ्रम में डालने वाले "संकीर्णरागों" का भी समावेश होता है। इस प्रकार के प्रवन्धादिगानों में अयोग्य रागों की संख्या बहुत होने से पंडितों ने इनका विशेष विचार किया नहीं है।

इस (स्वरमेल कला निधि) ग्रंथ का रचनाकाल ई. सं. १५५० (संवत् १६०६) का है; जो अष्टछाप की स्थापना के समय का माना जायगा। अष्टछाप की स्थापना का प्रारंभ करीब सं. १६०७ में हुआ* अतः अष्टछाप की स्थापना के समय उत्तम, मध्यम और अधम रागों की मान्यता प्रचलित थी। इस बात की अधिक स्पष्टता निम्न श्लोकों से की गई है—

"तथापि लक्ष्यमाश्रित्य लक्ष्यज्ञाननुसृत्य च ।।
विशंत्युत्तमरागाणामसंकीर्णस्वरूपिणाम् ।
मध्यमानां तथा पञ्चदशानां च ततः परम् ।।
अधमानां च केषांचिल्लक्षणं लक्ष्यतेऽधुना ।।

उत्तम, मध्यम और अधम वर्ग के इन रागों के अधिकतर नामादि लक्षण दाक्षिणात्य पद्धति के होने से अत्र निरुपयोगी होने से अत्र हम यही कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त श्लोक में जो "लक्ष्यमाश्रित्य" व 'लक्ष्यज्ञाननुसृत्य च' कहा गया है, इससे स्पष्ट होता है कि उस समय के व्यवहार और प्रचार के अनुसार ही रागों का उत्तम, मध्यम और अधम प्रकारों का वर्णन किया गया है।‡

तदुपरान्त "रागविबोध" ग्रंथ, जो ई.स. १६१० (संवत् १६६६) में पं. सोमनाथ के द्वारा लिखा हुआ है, के चतुर्थ विवेकांत–पृ. ५ पर प्रकाशित टीका में 'उत्तम' 'मध्यम' और 'अधम' रागों का वर्गीकरण ठीक पं. रामामात्य के "स्वरमेलकलानिधि" के वर्णन के क्रमानुसार 'उत्तम', 'मध्यम' और 'अधम' वर्गों में ही प्राप्त होता है।

---

* *अष्टछाप परिचय–पृ. ६६-६७*

‡ *स्वरमेलकलानिधि मुद्रित प्रति सन् १९१०, पृष्ठ ३२*

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि अष्टछाप की स्थापना के पूर्व समय से लेकर श्री विट्ठलनाथजी और श्री गोकुलनाथजी के समय तक रागों के त्रिवर्ग की मान्यता लोक में सुप्रचलित थी।

पुष्टिमार्ग के स्थापनाकर्ता श्रीमद्‌वल्लभाचार्यजी के समय से ही पुष्टिमार्गीय–सेवाक्रम की प्रत्येक प्रणाली में सात्विक, राजस, तामस, यानी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ (अधम) भावना का सैद्धांतिक दृष्टि से विचार किया गया है। इसी सैद्धांतिक भावना का उस समय में रागों के संबंध में जो प्रचलित व्यवहार एवं शास्त्रीय मान्यता के आधार पर श्री विट्ठलेश्वर, श्रीगोकुलनाथजी, श्री हरिरायजी तथा अष्टछापादि कीर्तनकार भक्तों ने रागों की इस मर्यादा को अपनाकर कुल ८४ रागों में ही भगवद्-गुणगान किया है।

अभी तक साम्प्रदायिक संगीत पर कोई विवेचनात्मक ग्रंथ प्राप्त न होने से इस वर्गीकरण के विषय में भी उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर हमारे मतानुसार निम्न प्रकार से विचार किया जा सकता है:—

(१) 'उत्तम रागों' में प्रबन्धादि आलापगान के योग्य और असंकीर्ण रागों का समावेश किया हुआ है। ये अधिकतर सम्पूर्ण जाति के हैं। 'उत्तम राग' केवल असंकीर्ण होने से उन्हें शुद्ध भी कहा जाता है। शुद्ध राग की व्याख्या में शास्त्रकारों ने बतलाया है कि जिन रागों में शास्त्रशुद्ध नियमों का पालन होता है तथा जो राग अन्य प्रकार के रागों से स्वतंत्र हैं अर्थात् जिन रागों में अन्य किसी राग की छाया नहीं आ सकती, जिनका विस्तार स्वतंत्र होता है, उन्हें शुद्ध राग कहते हैं। संक्षेप में शास्त्रोक्त नियमानुसार गाया जाने वाला और रंजन करने वाला राग शुद्ध कहलाता है। (तत्र शुद्धराग त्वं नाम शास्त्रोक्तनियमाद्रंजकत्वं भवति।)

(२) 'मध्यम-राग' प्रबन्धादि गान एवं आलापादि गान में उपयोगी माने गये हैं किन्तु व्यवहार में बहुत प्रचलित नहीं हैं। इन रागों का 'छायालगत्व' वर्ग में समावेश किया जाएगा। इनकी व्याख्या में कहा गया है कि—

"छायालगत्वं नामान्यच्छायालगत्वेन रक्तिहेतुत्वं भवति"

अर्थात्—छायालग रागों में अन्य किसी राग की छाया दिखाई देती है, जो प्रकार रंजक होता है। कुछ राग ऐसे हैं जिनमें किसी एक अन्य राग की छाया स्पष्ट होती है, जिसका हेतु रंजकत्व होता है।

(३) 'अधम-राग' प्रबन्धादि आलापगान के योग्य नहीं है, सामान्य लोगों को भ्रम में डालने वाले हैं, जिसका संकीर्ण रागों में (अन्तर्भूताश्च संकीर्णाः) समावेश किया गया है। संकीर्ण-राग की व्याख्या ग्रंथकारों ने इस प्रकार की है–संकीर्णरागत्वं नाम शुद्धच्छायालग मुख्यत्वेन रक्तिहेतुत्वं भवति अर्थात्–शुद्ध तथा छायालग रागों के मिश्रण से संकीर्ण रागों की उत्पत्ति होती है, यह मिश्रण लोकमनरंजनार्थ किया गया है।

जैसे छायालग रागों में किसी एक अन्य राग की ही छाया दीखती है परन्तु संकीर्ण राग में अधिक रागों की छाया दिखाई देती है।

राग-वर्गीकरण में मुख्यतः तीन पद्धतियाँ मानी जाती हैं–

१. राग-रागिनी (राग-कुटुंब व्यवस्था) पद्धति।
२. रागांग-पद्धति।
३. मेल (थाट) व्यवस्था (जन्य-जनक) पद्धति।

उपर्युक्त तीन पद्धतियों में से अष्टछाप के समय के पश्चात् मेल (जन्म-जनक) पद्धति का प्रचार हुआ है अतः उस समय के पूर्व राग-रागिनी पद्धति तथा रागांग पद्धति प्रचार में थी। राग-रागिनी-पद्धति तथा उत्तम-मध्यमादि तथा शुद्धच्छाया-लगत्वादि पद्धति की चर्चा की जा चुकी है।

रागांग-राग--उत्तम राग एवं शुद्ध राग के शास्त्रीय रागों को रागांग राग कहते हैं। यदि इनमें जरा सा भी नियमों का भंग हो जाय तो रागांगत्व नहीं रह सकता, राग उत्तम या शुद्ध वर्ग के राग माने जाते हैं।

भाषांग-राग--ये शास्त्रीय रागों के निकट के माने जाते हैं। इनका समावेश मध्यम एवं छायालगत्व रागों में किया जा सकता है।

क्रियांग-राग--इनमें शास्त्र के कुछ नियम कायम रहते हैं किन्तु बहुधा अवरोह में विचित्रता और लोकरंजन के लिए विवादी स्वरों का उपयोग होने से शुद्ध राग भ्रष्ट होता है। इनका समावेश हम अधम यानी संकीर्ण कोटि के राग में कर सकते हैं।*

उपांग-राग--इनमें मूल राग को भ्रष्ट किया जाता है अर्थात् राग के मूलस्वरों को निकाल कर नये स्वर प्रविष्ट किये जाते हैं। इस प्रकार राग प्रायः अष्टछापी पद्धति में वर्ज्य होने से इस वर्ग से हमारा कोई संबंध नहीं है।‡

सम्प्रदाय की सेवा के प्रत्येक अंग में अधम वस्तु त्याज्य होने से उत्तम तथा मध्यम वस्तुओं का ही विचार किया गया है, इस प्रकार संगीत (राग) की सेवा प्रणाली में भी उत्तम और मध्यम रागों का ही उपयोग किया गया है। उत्तमराग रागांग पद्धति के शुद्ध राग हैं। ये शुद्ध शास्त्रीय राग अधिकतर संपूर्ण जाति के दिखाई देते हैं। जिनकी संख्या २४ है। ये इस प्रकार है––

(१) भैरव, (२) रामकली, (३) विभास, (४) देवगंधार, (५) ललित, (६) मालकौंस, (७) हिंडोल, (८) पंचम, (९) बिलावल, (१०) आसावरी, (११) धनाश्री, (१२) टोडी, (१३) सारंग, (१४) नट, (१५) गौरी, (१६) पूर्वी, (१७) श्री, (१८) सोरठ, (१९) कल्याण, (२०) कान्हरा, (२१) केदारा, (२२) बिहागरो, (२३) वसंत, (२४) मल्लार।

** ‡ हि. सं. पद्धति भाग-१ (गुजराती पृष्ठ-१७५)*

उपर्युक्त २४ रागों में वसंत ऋतु के तीन (वसंत, पंचम, हिंडोल) तथा वर्षाऋतु का मल्लार इन चार के अतिरिक्त वीस राग नित्य सेवा क्रम में पर्याप्त हैं। वसंत और वर्षा ऋतु सहित नित्यक्रम की कीर्तन सेवा का प्रारंभ इन उत्तम वर्ग के २४ रागों से ही हुआ होगा, अर्थात् श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय में अधिकतर इन २४ रागों में ही कीर्तनगान होता होगा, यह हमारी मान्यता है। इस समय भोग सामग्री में भी व्रजवासियों के घर से जो कुछ आया करता था, उसी का भोग लगाया जाता था, और श्रृंगार में मस्तक पर पाग तथा मयूरपिच्छ की चंद्रिका (मुकुट) और श्रीकंठ में गुंजा की माला धराई जाती है।

तत्पश्चात् क्रमशः भोग-सामग्री, श्रृंगार, उत्सव, त्यौहारादि का क्रम बढ़ता रहा। तदनुसार गानप्रणाली में भी मध्यम वर्ग के अर्थात् भाषांग पद्धति के छायालग रागों में से क्रमशः ६० रागों का विनियोग किया गया। जैसेः—नट बिलावल, गौडसारंग, हमीर कल्याण, सोरठामल्लार, मालव गौरा, नायकी-कान्हरा इत्यादि बिलावल के, सारंग के, गौरी के, कल्याण के, मल्लार के, कानडा के तथा वसंत आदि के छायालगत्व राग एवं अन्य मध्यम वर्ग के रागों में समय ऋतु, त्यौहारादि के भावानुसार कीर्तन गान से प्रभु को रिझाने लगे। इस प्रकार का क्रम अष्टछाप की स्थापना के समय से क्रमशः बढ़ने लगा और श्री गोकुलनाथजी के समय तक ८४ रागों की नियत संख्या स्थिर हो चुकी थी।

मध्यम वर्ग के ६० रागों की संख्या तथा उत्तम प्रकार के २४ रागों की संख्या मिलाकर कुल राग-संख्या हमारी दृष्टि से निम्न प्रकार प्राप्त होती है—

प्रातः कालीन राजभोग पर्यंत की सेवाक्रम के राग—

भैरव १. रामकली २. गुनकली ३. देवगंधार ४. खट ५. परज ६. ललित।

१. पंचम २. हिंडोल ३. सोहनी ४. विभास ५. रामग्री ६. बिलावल (शंकराभरण)।

१. अलरया बिलावल २. नट-बिलावल ३. कुकुम-बिलावल ४. देवगिरि-बिलावल ५. सोरठ-बिलावल ६. सुहा—बिलावल ७. गौड-बिलावल।

आसावरी १. जीवनपुरी (जौनपुरी) २. धनाश्री ३. सांवेरी।

सारंग (ब्रि.) १. गौड-सारंग २. मधमाध-सारंग ३. सामंत-सारंग ४. नूर-सारंग ५. बड़हंस-सारंग।

टोडी १. गुर्जरी २.

सायंकालीन शयन पर्यंत की सेवाक्रम के राग—

नट १. नटनारायण २.

पूर्वी १. मारू २.

सोरठ १. खमाज २. काफी ३.

हमीर १. ईमन २.

गौरी १. जैतश्री २. मालश्री ३.

गौरी १. गौरी (प्र. चेती) २. मालीगौरा ३. ललिता गौरी ४.

श्री १. जैतश्री २. मालश्री ३.

कल्याण १. हमीरकल्याण २. पूर्व-कल्याण ३. स्याम कल्याण ४. ईमन कल्याण ५. भूपाली (भूप-कल्याण) ६. हिंडोल ।

कान्हरो १. नायकी (कानडा) २. अडाना (कानडा) ३. रायसो (कानर) ४. सिधुरा (कानरा) ५. सुघराई (कानरा) ६.

वसंत १. ललित वसंत २. हिंडोल वसंत ३. पंचम वसंत ४.

मल्लार १. मेघ-मल्लार २. गौड-मल्लार ३. सोरठ-मल्लार ४. सूर-मल्लार ५. चूंडिया मल्लार ६.

संख्या	रागनाम	कुंभनदास	सूरदास	परमानन्ददास	कृष्णदास	गोविन्दस्वामी	चतुर्भुजदास	छीतस्वामी	नंददास
१.	भैरव	।	।	।	।	।	।		
२.	रामकली	।	।	।	।	।	।	।	।
३.	बिभास	।	।	।	।	।	।	।	।
४.	ललित	।	।	।	।	।	।	।	।
५.	मालकौंस	।	।	।	।	।	।	।	।
६.	रामग्री	।	।	।	।	।	।		
७.	देवगंधार	।	।	।	।	।	।	।	।
८.	बिलावल	।	।	।	।	।	।	।	।
९.	टोडी	।	।	।	।	।	।	।	।
१०.	सामेरी	।	।	।			।		
११.	आसावरी	।	।	।	।	।	।	।	।
१२.	धनाश्री	।	।	।	।	।	।	।	।
१३.	सारंग	।	।	।	।	।	।	।	।
१४.	वसंत	।	।	।	।	।	।	।	।
१५.	पंचम	।	।	।	।				।
१६.	सोरठ	।	।	।	।	।	।	।	
१७.	मल्लार	।	।	।	।	।	।	।	।
१८.	मेघ मलार	।	।		।				
१९.	सोरठ मलार	।	।			।	।	।	।

संख्या	राग-नाम	कुंभनदास	सूरदास	परमानन्ददास	कृष्णदास	गोविन्दस्वामी	चतुर्भुजदास	छीतस्वामी	नन्ददास
२०.	नट	।	।	।	।	।	।	।	।
२१.	नटनारायण	।	।		।		।		
२२.	पूर्वी	।	।	।	।	।	।	।	।
२३.	श्री	।	।	।	।	।		।	
२४.	तेजश्री	।	।	।		।	।	।	
२५.	मालवगौरा	।	।		।	।	।	।	।
२६.	गोडी (गोरी)	।	।	।	।	।	।	।	।
२७.	मालव	।	।	।	।	।	।	।	
२८.	हमीर	।	।	।	।	।	।	।	।
२९.	ईमन	।	।	।	।	।	।	।	।
३०.	कल्याण	।	।	।	।	।	।	।	।
३१.	केदारो	।	।	।	।	।	।	।	।
३२.	कानरो	।	।	।	।	।	।	।	।
३३.	अडानो	।	।	।	।	।	।	।	।
३४.	रायसो	।	।	।	।	।	।		
३५.	विहाग	।	।	।	।	।	।	।	।
३६.	बिहागरी	।	।	।	।	।	।	।	।
३७.	खट		।	।	।				
३८.	परज		।	।					।
३९.	सुहा		।	।	।	।	।		
४०.	सुघराई		।		।				।
४१.	हिंडोल				।				
४२.	गुर्जरी		।	।	।				
४३.	देसाख		।	।	।			।	।
४४.	मारू		।	।	।	।	।		।
४५.	काफी		।	।	।	।	।	।	।
४६.	जोनपुरी							।	
४७.	मालश्री			।			।	।	
४८.	जैजैवंती		।	।	।				।
४९.	नायकी		।	।	।	।		।	।
५०.	हमीरकल्याण							।	
५१.	केदार नट							।	
५२.	बड़हंस								।
५३.	श्याम कल्याण								।
		३६	४५	४२	४२	३६	३६	३६	३६

राग और रस

भारतीय संगीत शास्त्रों में राग एवं रस, राग एवं नायक-नायिका भेद, तथा स्वर एवं रस का संबंध बताया गया है। भारतीय साहित्य में नौ रस माने गये हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि जैसा नायक-नायिका भेद का काव्य-तत्त्व से प्रगाढ़ संबंध है वैसा ही राग का भी संबंध होना चाहिये।

साहित्य के नौ रस इस प्रकार से बताये गये हैं-- शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत, रौद्र, करुण, बीभत्स, भयानक एवं शान्त।

नायक-नायिका भेद का संक्षिप्त निरूपण इस प्रकार है। नायक चार प्रकार के होते हैं-अनुकूल, दक्ष, शठ, धृष्ट । नायिका के प्रमुख तीन भेद बताये गये हैं- स्वकीया, परकीया एवं साधारण। (सामान्य) स्वकीया की व्याख्या इस तरह है-

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।

परि० पृ. ५७ साहित्यदर्पण

वय की दृष्टि से स्वकीया के तीन भेद हैं:-मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। फिर धीरा, अधीरा, धीराधीरा, जैसे भेदों से षड्विध नायिका होती हैं तथा कनिष्ठा-ज्येष्ठा-भेद से द्वादश प्रकार एवं मुग्धा एक, ऐसे स्वकीया के तेरह भेद है। परकीया भी वरोढा एवं कन्यका भेद से द्विविध है। सामान्य नायिका का एक प्रकार है-वेश्या। उनमें से प्रत्येक के अष्टविध भेद हैं-

(१) स्वाधीनभर्तृका
(२) खण्डिता
(३) अभिसारिका,
(४) कलहान्तरिता
(५) विप्रलब्धा
(६) प्रोषितभर्तृका
(७) वासकसज्जा
(८) विरहोत्कंठिता।

अष्टछाप महाकवियों ने एवं इस परंपरा में समाविष्ट अन्य भक्त कवियों ने अपने कीर्तनों में उपर्युक्त नायिका भेदों का भी समावेश किया है।

संगीत-शास्त्र के प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार राग-रगिनियों का सम्बन्ध रस एवं नायक-नायिका-भेद से इस तरह बताया गया है-

राग/रागिनी	रस	नायक	नायिका
१. **भैरव :**	शान्त	धीरोदात्त	स्वीया
(१) भैरवी	,,	अनुकूल	प्रगल्भा गाढतारुण्य, प्रोषितभर्तृका, खंडिता
(२) बंगाली	विप्रलंभ शृंगार	धीरोदात्त	प्रगल्भा, अभिसारिका, प्रोषितभर्तृका
(३) बेरारी	संयोग-शृंगार	अनुकूल	सामान्य प्रौढा, स्वाधीनभर्तृका
(४) मधु माधवी	,,	धीरोदात्त	स्वीया, मध्या, स्वीया, प्रगल्भा
(५) सिंधवी	विप्रलंभ-शृंगार	धृष्ट	स्वीया, प्रगल्भा, अधीरा, खंडिता
२. **मालकोंश**	संयोग-शृंगार	दक्षिण	स्वीयानायिका
(१) टोडी	विप्रलंभ-शृंगार	धीरप्रशान्त	परकीया कन्या
(२) गौरी	,,	धीरललित	स्वीया, मध्या प्रौढ़-यौवना, प्रोषितभर्तृका
(३) गुणकली	,,	धीरोदात्त	मुग्धा, मान स्वीया, मृदु-अभिसारिका विरहोत्कंठिका
(४) खंभावती	वि. शृं.	धीरललित	सामान्या, वासकसज्जा
(५) कुकुभ	सं. शृं.	,,	समस्तरतिकोविदा, सामान्या
३. **हिंडोला**	वि. शृं.	शठ	प्रौढा परकीया
(१) रामकली	सं. शृंगाग	धीरोदात्त	कन्याभिसारिका
(२) देशाख	,,	,,	,,
(३) ललिता	,,	अनुकूल	अभिसारिका; प्रौढा
(४) विलावली	वि. शृं.	धीरोदात्त	खंडिता-प्रौढाभिसारिका
(५) पटमंजरी	,,	,,	स्वकीया, प्रोषितभर्तृका

४.	दीपक	संयोग शृंगार	शठ	स्वीया-मध्या
(१)	देशी	,,	धीरोदात्त	प्ररुढस्मराभिसारिका
(२)	कामोदी	वि. शृं.	,,	प्ररुढयौवनाभिसारिका
(३)	नट	सं. शृं.	अनुकल	स्वाधीनभर्तृका, परकीया
(४)	केदारि	वि. शृं.	धीरप्रशांत	स्वीया, प्रोषितभर्तृका
(५)	कान्हरा	,,	धृष्ट	प्रगल्भा, अधीरा, प्रोषितभर्तृका
५.	श्री	वि. शृं.	धीर प्रशान्त	कन्यका
(१)	मालश्री	,,	धीरोदात्त	विप्रलब्धाभिसारिका
(२)	आसावरी	,,	,,	सामान्य, श्वेताभिसारिका
(३)	धनाश्री	,,	,,	मुग्धा, मान मृदुविरहोत्कंठिता
(४)	वसंत	,,	,,	मध्याभिसारिका
(५)	मारू	,,	,,	प्रगल्भा, वासकसज्जा
६.	मेघ	वि. शृं.	धीर प्रशांत	परकीया
(१)	टंक	,,	अनुकल	स्वीया, मध्या, विरहोत्कंठिता
(२)	मल्हार	,,	,,	स्वीया, मध्या, प्रोषितभर्तृका
(३)	गुर्जरी	,,	शठ	सामान्या, खंडिता
(४)	भूपाली	,,	,,	प्रगल्भा, श्वेताभिसारिका
(५)	देशकार	,,	धीरोदात्त	स्वीया, मध्या, प्ररुढस्मरा